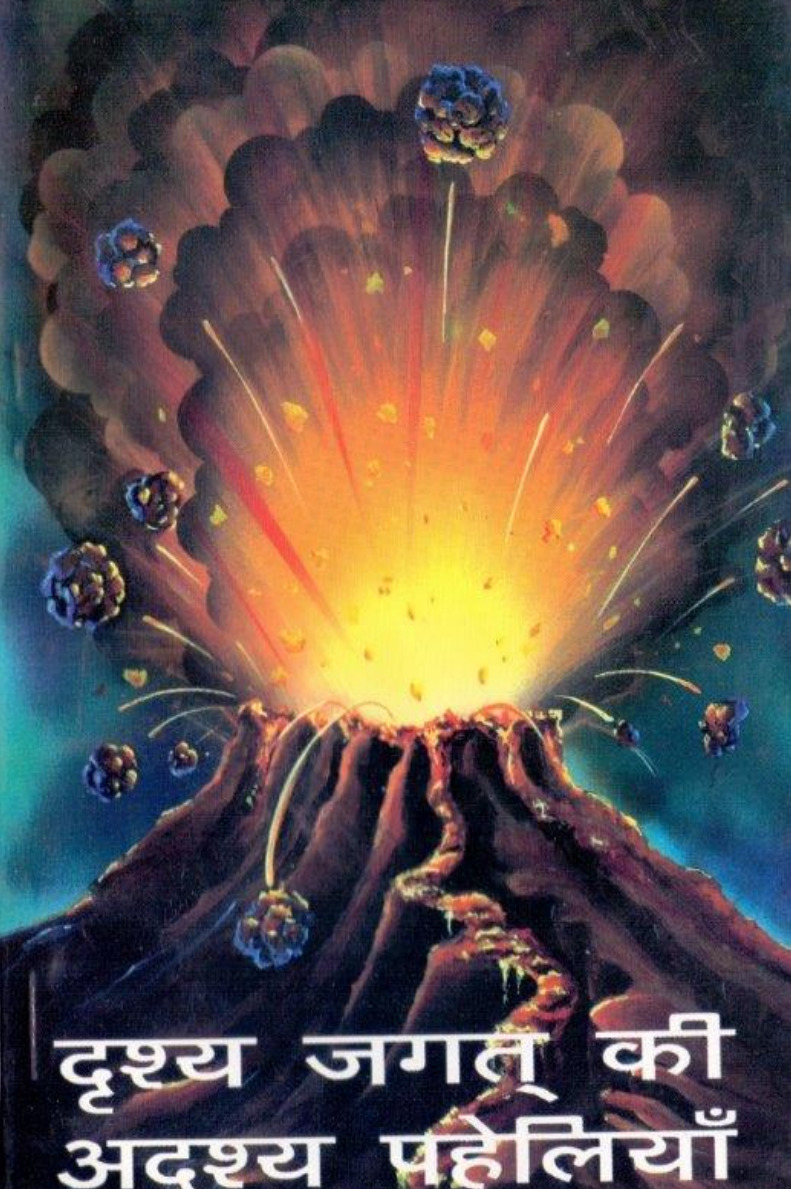

दृश्य जगत् की अदृश्य पहेलियाँ

दृश्य जगत् की अदृश्य पहेलियाँ

❋

लेखक :
वेदमूर्ति तपोनिष्ठ पं० श्रीराम शर्मा आचार्य

❋

प्रकाशक :
युग निर्माण योजना विस्तार ट्रस्ट
गायत्री तपोभूमि, मथुरा
फोन : (०५६५) २५३०१२८, २५३०३९९
मो. ०९९२७०८६२८७, ०९९२७०८६२८९
फैक्स नं०- २५३०२००

❋

पुनरावृत्ति सन् २०११ मूल्य : १९.०० रुपये

विषय-सूची

विषय	पृष्ठ
१. ये रहस्य क्यों नहीं सुलझते	३
२. अद्‌भुत जगत् के अद्‌भुत रहस्य	१५
३. पेड़-पौधों की विस्मयजनक गतिविधियाँ	२६
४. जीवन पृथ्वी तक ही सीमित नहीं	४४
५. देवलोक और असुरलोक देखना हो तो	५७
६. शक्ति का स्रोत पदार्थ से परे है	७४
७. प्रकृति उपभोग्य ही नहीं, उपास्य भी	६१

विज्ञान की अधुनातन प्रगति और चंद्रमा तथा मंगल पर विजय जैसे अभियान निस्संदेह यह सिद्ध करते हैं कि मनुष्य संसार का सर्वश्रेष्ठ और बुद्धिशील प्राणी है, परंतु इसी कारण यह सृष्टि की सर्वोच्च सत्ता, सामर्थ्यवान इकाई नहीं हो जाता। विपुला प्रकृति के थोड़े-से रहस्य हाथ लग जाने पर मनुष्य अपने आपको प्रकृति और ईश्वर से भी बड़ा समझने लगा; लेकिन जब प्रकृति उसके सामने ऐसे सवाल कर देती है, जिन्हें वह सुलझा न सके, तब मनुष्य की क्षुद्रता और अल्प-सामर्थ्य का आभास होता है।

प्रकृति के ऐसे ही रहस्यपूर्ण सवाल जहाँ-तहाँ बिखरे पड़े हैं और उनका हल आज तक कोई भी वैज्ञानिक या बुद्धिशील मेधावी नहीं कर सका है।

ये रहस्य क्यों नहीं सुलझते

❋

होनोलूलू से ७५ मील की दूरी पर कवाई टापू है। यह पश्चिमी आइलैंड के हवाइयाँ ग्रुप में आता है। नहिली के किनारे एक ६० फुट ऊँची और आधा मील लंबी एक पहाड़ी है। इसमें बालू, कोरल, शेल्स तथा लावा के कण पाये जाते हैं; जो अपने आप में एक आश्चर्य हैं, उससे भी भी आश्चर्य यह है कि इस टीले से प्रायः कुत्ते के भौंकने की आवाज आया करती है। रात के अंधकार और प्राकृतिक प्रकोप जैसे अवसरों पर यह ध्वनि बहुतायत से सुनने को मिलती है। बच्चों के लिये यह क्षेत्र निषिद्ध है, क्योंकि यह बोली सुनकर बच्चे डर जाते हैं। आज तक कोई भी विशेषज्ञ, कोई भी वैज्ञानिक उस कारण की खोज नहीं कर पाया कि इस टीले से यह भौंकने की आवाज क्यों आती है ?

ऐसा भी नहीं कि पास के किसी गाँव से कोई कुत्ते भौंकते हों और उनकी प्रतिध्वनि आती हो। इतिहास में फ्रेड पैटजेल, जिसे "हाग कालर चैंपियन" के नाम से जाना जाता है, वह तो उदाहरण है, जिसके बारे में प्रसिद्ध है कि वह इतना ऊँचा बोलता था कि उसकी आवाज ३ मील दूर तक मजे से सुनी जा सकती थी; किंतु इस टापू में ऐसा कोई भी व्यक्ति नहीं, कोई भी जंतु नहीं, जिसकी आवाज इतनी दूर तक पहुँच सकती हो। रहस्य ज्यों का त्यों बना हुआ है और अपने विश्लेषण की एक लंबे समय से प्रतीक्षा कर रहा है।

प्रकृति के कुछ रहस्य तो ऐसे हैं, जिन्हें देखकर दाँतों तले उँगली दबानी पड़ती है। गाने वाली बालू से भरे रेगिस्तान अभी भी अपने रहस्य बताने के लिए मानवी-बुद्धि को चुनौती दे रहे हैं।

गाने वाली बालू संसार के विभिन्न भागों में पाई जाती है। बारहवीं शताब्दी की बात है—मध्य-एशिया के दुर्गम रेगिस्तान टकला माकान को मार्कोपोलो अपने दल सहित पार कर रहा था।

एक शाम खेमा गाड़ते समय, उस दल ने सीटी जैसी सुरीली आवाज लगातार बजते सुनी। इसका कोई कारण समझ में नहीं आया, तो दल के कुली भाग खड़े हुए। उन्होंने उसे स्पष्टतः भूत का आतंक माना।

प्रायः सभी कुली भाग खड़े हुए थे; पर तीन को उसने बड़ी मुश्किल से रोका। भूत के आतंक से वे बदहवास हो रहे थे। इस सुनसान में लगातार इतनी मीठी वंशी रातभर आखिर भूत के अतिरिक्त और कौन बजा सकता है ? वे निरंतर भागने की आतुरता व्यक्त करते रहे। मार्कोपोलो ने बड़ी चतुरता से उन्हें रोक पाने में सफलता पाई। उसने बचे हुए तीन कुलियों को अपने पास एक जादू का ताबीज दिखाया और कहा—यह भूतों से रक्षा करने में पूरी तरह समर्थ है। कल जो कुली भागे थे, उन्हें सीटी बजाने वाले भूत ने सामने वाले टीले के पीछे पकड़कर चबा डाला है और उनकी चमड़ी की डुग्गी बनाकर बजाता फिर रहा है। तुम भागना चाहो तो भले ही चले जाओ, पर तुम्हारी भी वही दुर्गति होगी। हाँ, मेरे पास रहोगे, तो यह ताबीज मेरी ही नहीं, तुम्हारी भी रक्षा कर लेगा। इस आश्वासन से कुली रुक गए और उस रेगिस्तान को पार कर सकना संभव हो गया। मार्कोपोलो ने उस सुनसान के संगीत का पता लगाने में बहुत अक्ल लड़ाई, पर कुछ नतीजा नहीं निकला। भूत पर वे विश्वास नहीं करते थे, पर कुछ इस नीरव-निनाद का अन्य कोई कारण भी तो समझ में नहीं आता था।

उस रहस्य पर से पर्दा इस शताब्दी के आरंभ में उठा है। सर आरेल स्टाइन ने गोबी मरुस्थल का सर्वे करते हुए यह विवरण प्रकाशित किया कि 'टकला माकान' क्षेत्र में बिखरी बालू ध्वनि मुखर है। उससे वाद्य-यंत्रों की तरह क्रमबद्ध ध्वनि-प्रवाह निकलता है। गोबी मरुस्थल प्रायः आठ लाख वर्गमील में बिखरा पड़ा है। इसके कितने ही क्षेत्र ऐसे हैं, जहाँ बालू गाती है। इनकी आवाजें अलग-अलग क्षेत्रों में अलग-अलग तरह की हैं। टकला-माकान क्षेत्र के पश्चिमी अंचल 'अदांस-पादशा' के सारे क्षेत्र

की बालू ध्वनि-मुखर है। वहाँ अलग-अलग स्थानों में अलग-अलग तरह के संगीत बजते, गूँजते सुने जा सकते हैं।

स्पेन के एक यात्री एंटेनियो डी० अल्लोआ जब अपने दल के साथ ऐंड्रीज पर्वत श्रेणी पार कर रहा था, तो पंचामार्का नोटी के समीप वायुमंडल में गूँजता हुआ संगीत सुना। उसे सुनकर सारा दल भाग खड़ा हुआ। भगोड़ों ने यहाँ तक बताया कि उन्होंने अत्यंत विशालकाय दैत्य की डरावनी छाया भी उस क्षेत्र में भागती-दौड़ती अपनी आँखों से देखी थी।

प्रकृति के कतिपय अद्‌भुत रहस्यों का पता लगाने में अपने जीवन का महत्त्वपूर्ण भाग खर्च करने वाले अन्वेषी लेवरी ने दक्षिणी अमेरिका के दुर्गम अंचलों की खोज-बीन की। उसने स्कूइवो नदी के रेतीले-मैदान में मुखरित होने वाले ध्वनि-संगीत का वर्णन किया है। इसका विवरण सर आर्थर कानन डायल की 'लास्टवर्ल्ड' में विस्तारपूर्वक दिया गया है।

इसी प्रकार नील नदी के उस पार कारनक के खंडहरों में दो पत्थर की घूरती हुई प्रतिमाएँ हैं। दोनों एक-दूसरे की ओर मुँह किये एक मील के फाँसले पर जमी हैं, इनमें से एक प्रतिमा तो पत्थर की तरह चुप खड़ी रहती है; पर दूसरी से अक्सर कुछ बोलने की आवाज आया करती है। पत्थर की मूर्ति क्यों और कैसे बोलती है ? उसका पता लगाने की हर संभव कोशिश की गयी, किंतु अभी तक तो कुछ ज्ञात नहीं हो पाया। मूर्ति में रेडियो यंत्र भी नहीं लगे हैं, जिससे अनुमान किया जाए कि संभव है, वह अदृश्य शब्द प्रवाहों को पकड़ लेते हों और वह ध्वनि में परिवर्तित हो जाते हैं।

चेकोस्लोवाकिया की राजधानी प्राग के दो नवयुवकों के बारे में एक बड़ी विचित्र बात सुनने को आई। यह कि जब दोनों जोर-जोर से साँस लेते हैं, तो उनके शरीर के अंदर से विचित्र प्रकार की ध्वनियाँ और संगीत आने लगता है, जो किसी समीपवर्ती रेडियो स्टेशन का ब्राडकास्ट प्रोग्राम भी हो सकता है। दोनों युवक

जोर-जोर से साँस लेते समय किसी लाउड-स्पीकर के सिरे का स्पर्श करते थे, तो आवाज इतनी ऊँची हो जाती थी कि सुनने वालों को ऐसा लगता था, जैसे कोई रेडियो पूरा खोल दिया गया हो।

दोनों युवक एक फैक्टरी में काम करते थे। डॉक्टरों ने उनकी पूरी शारीरिक परीक्षा की; पर कोई कारण न बता सके। अनेक पत्रकारों ने विस्तृत छानबीन की पर निराशा ही हाथ लगी। युवकों के शरीर से संगीत-ध्वनियों के प्रसारण का कोई कारण नहीं जाना जा सका।

विश्व विख्यात पर्यटक बर्ट्रेंड टामस ने एक बार अरब रेगिस्तान की यात्रा की तो उन्हें कुछ ऐसे बालू के टीले मिले, जो गाते थे और उनके गाने की ध्वनियाँ इतनी स्पष्ट और ऊँची होती थीं कि काफी दूर बैठकर भी उन्हें मजे से सुना जा सकता था। यात्रा संस्मरण में टामस ने लिखा है कि यह मधुर-संगीत कई तरह के वाद्य-यंत्रों से संयुक्त होता था। कभी ढोलक की आवाज आती थी, कभी वीणा की-सी झंकार।

सहारा के रोने वाले टीलों की कथा भी कुछ ऐसी ही है। केलीफोर्निया में भी बालू के कुछ ऐसे टीले हैं, जो गाते हैं। हवाई द्वीप का एक टीला कुत्ते की-सी आवाज में भौंकता है। दक्षिण अफ्रीका में कुछ ऐसी रहस्यमय भीतें हैं, वह अट्टहास तक करती सुनी गई हैं। योरोप में कुछ ऐसे समुद्र तट हैं, जहाँ यात्री मधुर संगीत-ध्वनियों का रसास्वादन करते हैं। लंकाशायर के सेंट एनी के समुद्री तट की बालू को एक विशेष प्रकार से दबाया गया, तो उससे विचित्र तरह की ध्वनियाँ प्रसारित हुईं। वैज्ञानिकों ने इन सब रहस्यों का पता लगाने की चेष्टा की; पर अभी तक वे इतना ही जान पाए हैं कि प्रकृति में बालू की तरह के कुछ ऐसे कण हैं, जो परस्पर संघात से प्राकृतिक-ध्वनियाँ निकालते हैं।

एक बार केलीफोर्निया की एक स्त्री भोजन पकाने जा रही थी, अभी वह उसकी तैयारी कर ही रही थी कि चूल्हे से विचित्र

प्रकार के गाने की ध्वनि निकलने लगी। गाना पूरा हो गया, उसके साथ ही ध्वनि आनी भी बंद हो गई। न्यूयार्क में एक बार बहुत-से लोग रेडियो प्रोग्राम सुन रहे थे, एकाएक संगीत-ध्वनि तो बंद हो गई और दो महिलाओं की ऊँची-ऊँची आवाज में बातें आने लगीं। रेडियो स्टेशन से पूछा गया तो पता चला कि वहाँ से केवल नियमबद्ध संगीत ही प्रसारित हुआ है। बीच की आवाज कहाँ से आई, यह किसी को पता नहीं है।

अहमदनगर जिले में प्रवरा नदी के तट पर सतराता सोनगाँव में बने एक शिव-मंदिर से आने वाली संस्कृत आवाज को बहुत-से लोगों ने जा-जाकर सुना। यह संगीतमय ध्वनि शिवलिंग पर डाले जाने वाले जल की निकासी के लिए बनाई गई नाली से आती थी। पूना के ८० वर्षीय इतिहासज्ञ श्री डी० पी० पोद्दार ने भी इस विचित्र ध्वनि की पुष्टि की थी और आगे अन्वेषण कराए जाने का सुझाव दिया था।

जैसलमेर में भी कुछ बालू के टीले पाए जाते हैं, जहाँ से कराहने आदि की कई तरह की ध्वनियाँ सुनी गई हैं। वहाँ के निवासियों का कहना है कि यह आवाजें इन टीलों में दबी प्रेतात्माओं की आवाजें हैं।

कुछ वैज्ञानिकों ने इन रहस्यपूर्ण संगीत-ध्वनियों का कारण रेडियो के शार्टवेव ट्रांसमीटरों को बताया है। उनका विश्वास है कि इस तरह के रहस्य भविष्य में और भी बढ़ सकते हैं। शिकागो में एक महिला ने पुलिस को रिपोर्ट दी है कि वह जैसे ही अपने रसोई घर का दरबाजा खोलती है, उसके विद्युत् चालित चूल्हे से एक विशेष प्रकार की संगीत-ध्वनि आने लगती है। दरवाजा बंद करते ही संगीत भी बंद हो जाता है। इसकी इंजीनियरों ने जाँच की तो पाया कि न तो पास में कोई शार्टवेव ट्रांसमीटर है और न ही बगल में किसी रेडियो से ध्वनि पकड़ी जा रही है, क्योंकि जाँच करते समय पास-पड़ोस के तमाम सेट बंद करा दिए गए थे।

बिजली के यंत्रों से इस तरह की ध्वनियाँ अधिक आती हैं, इसलिये यह रहस्य तात्त्विक है, ऐसा तो समझा जा रहा है पर अभी यथार्थ तथ्य पकड़ में नहीं आ रहे।

सेंट लुईस में एक बार एक रात्रि भोज का आयोजन किया गया। जैसे ही संगीतकारों ने वाद्य-यंत्र उठाए कि उनसे ताजा खबरें प्रसारित होने लगीं। इससे आयोजन के सारे कार्यक्रम ही फेल हो गये। नाइरियाल की एक स्त्री ने बताया कि उसके स्नान करने के टब से गाने की ध्वनियाँ आती हैं। एलवर्टा के एक किसान का कहना है कि जब वह अपने कुएँ के ऊपर पड़ी हुई लोहे की चादर को हटाता है तो कुएँ के तल से संगीत सुनाई देने लगता है। पुलिस को संदेह हुआ कि किसान ने कहीं रेडियो छुपाया होगा। इसलिये इंच-इंच जमीन की जाँच कर ली। पड़ोसियों के रेडियो भी बरामद कर लिए, पर जैसे ही उस लोहे की चादर को हटाया गया—आवाज बार-बार सुनाई दी और अंततः उस समस्या का कोई हल निकाला नहीं जा सका।

कुओं, बालू के टीलों, समुद्र तट, बिजली के पंखों, चूल्हों और वाद्य-यंत्रों के संगीत क्यों और कहाँ से फूट पड़ता है ? यह अब तक भी वैज्ञानिकों के लिए एक पहेली बना हुआ है। अब तक इस संबंध में जितनी जाँच और पड़तालें हुईं, वह सबकी सब अधूरी रह गईं। किसी एक मत पर नहीं पहुँचा जा सका कि इस तरह की संगीत-ध्वनियों का अमुक कारण है।

विज्ञान की अधुनातन प्रगति और चंद्रमा तथा मंगल पर विजय जैसे अभियान-निस्संदेह यह सिद्ध करते हैं कि मनुष्य संसार का सर्वश्रेष्ठ और बुद्धिशील प्राणी है। यह बात सदा से स्वीकार भी की जाती रही है, परंतु इसी कारण वह सृष्टि की सर्वोच्च सत्ता सामर्थ्यवान इकाई नहीं हो जाता। फिर भी मनुष्य का स्वभाव, प्रकृति, आचार-विचार और संस्कृति पर दिनों-दिन यह दंभ छाता जा रहा है कि उसकी बराबरी दूसरा कोई प्राणी तो क्या प्रकृति भी नहीं कर सकती। इस दंभ के कारण ही उसमें स्वार्थ, अनुदारता,

अहंकार, अनास्था और अश्रद्धा के बीज दिनों-दिन विकसित होते जा रहे हैं। उदाहरण के लिये यही विचार आम होते जा रहे हैं कि मनुष्य से बड़ा कोई नहीं है और वह दिनों-दिन और अधिक समर्थ सशक्त होता जाएगा।

इसे दंभ नहीं तो और क्या कहा जायेगा कि विपुला प्रकृति के थोड़े-से रहस्य हाथ लग जाने पर मनुष्य अपने आपको प्रकृति और ईश्वर से भी बड़ा समझने लगे। यह दंभ ठीक उसी स्तर का है—जैसे अनपढ़ लोगों के गाँव में कोई साधारण पढ़ा-लिखा व्यक्ति पहुँच जाए और यह दावा करने लगे कि मैं दुनिया का सबसे बड़ा विद्वान् हूँ।

यह दावा दूसरे लोगों की दृष्टि में नितांत हास्यास्पद ही होगा। कोई व्यक्ति उसके सामने एक जटिल सवाल कर दे और वह उस सवाल को हल न करने के कारण खिसिया उठे, उसी तरह की स्थिति मनुष्य की तब हो जाती है, जब प्रकृति उसके सामने ऐसे सवाल कर देती है, जिन्हें वह सुलझा न सके। उस दशा में मनुष्य की अपनी क्षुद्रता और अल्प सामर्थ्य का आभास होता है।

प्रकृति के ऐसे ही रहस्यपूर्ण सवाल जहाँ-तहाँ बिखरे पड़े हैं और उनका हल आज तक कोई भी वैज्ञानिक या बुद्धिशील मेधावी नहीं कर सका। एक ऐसा ही सवाल प्रकृति ने ब्रिटेन के कुछ क्षेत्रों में किया है। 'पत्थर' शब्द का उच्चारण करते ही मन में कठोरता, अनम्यता और अडिगता की कल्पना उभरती है। कठोर, संवेदनहीन और किसी को कष्ट-कठिनाई में देखकर भी प्रभावित न होने वाले व्यक्ति को पाषाण हृदय भी कहा जाता है; परंतु कुछ पत्थर ऐसे भी होते हैं, जो कठोर होते हुए भी मुलायम और नम्य होते हैं। ब्रिटेन के कुछ क्षेत्रों के अलावा ये पत्थर भारत में हरियाणा के चरखी दादरी क्षेत्र में पाए जाते हैं।

इन पत्थरों की नम्यता और लचकीलेपन को देखकर लोगों ने इन्हें 'दिलदार' पत्थर का नाम दिया है। दिल शब्द का उच्चारण

करते ही लोचपन और संवेदनशीलता की कल्पना उभरती है। इस तरह का लचीलापन और कोमलता उन दिलदार पत्थरों में पायी जाती है। इन पत्थरों का कोई रंग नहीं होता और ये सामान्य पत्थरों की तरह अपारदर्शी भी होते हैं; परंतु लचक होने के कारण इनका उपयोग किन्हीं निर्माण कार्यों में नहीं होता।

इन पत्थरों का गठन लाखों कोशों के संघटन से होता है और ये कठोर होते हुए भी हवा पानी के प्रभाव से छलनी की तरह छिद्रदार बन जाते हैं। इनमें हवा-पानी के आने-जाने के लिए पर्याप्त स्थान भी होता हैं। दोनों सिरों को पकड़कर इन्हें हिलाया जाए तो ये रबड़ की तरह लहराने भी लगते हैं; किंतु फिर भी ये ठोस होते हैं। इस प्रकार के लोचदार और ठोस पत्थर कैसे बनते हैं ? विज्ञान अभी इसको नहीं समझ पाया है।

■ अज्ञात स्रष्टा का अद्‌भुत सृजन

न केवल गाने वाले संगीतकार पत्थर और रेत इस प्रकृति के आश्चर्य हैं; अपितु और भी कई विस्मय विमुग्ध कर देने वाली घटनाएँ आए दिनों देखने-पढ़ने में आती है। श्रीनगर से ८७ मील दूर अमरनाथ की यात्रा और वहाँ अपने आप बनने वाले शिवलिंग को देखने के लिए तो भारत के ही नहीं संसार के हजारों लोग जाते हैं।

हिंदू जन अपनी श्रद्धा के सुमन आशुतोष के चरणों में समर्पित करने के लिए और दूसरे विदेशी लोग प्रकृति का वह चमत्कार देखने के लिए, जिसका कोई वैज्ञानिक विश्लेषण आज तक नहीं किया जा सका, प्रतिवर्ष लाखों की संख्या में अमरनाथ जाते हैं।

चंद्रमा पृथ्वी की एक ऐसी दिशा में अवस्थित है कि वह पृथ्वीवासियों को ३० दिन में, एक पक्ष में क्रमशः बढ़ता हुआ पूर्णमासी के दिन पूर्ण दर्शन देने की स्थिति में आ जाता है, तो दूसरी बार क्रमशः घटता हुआ अमावस्या के दिन बिल्कुल छुप

जाता है। यहाँ विज्ञान का कार्य-कारण सिद्धांत समझ में आता है। कोई क्रिया विशेष कारणों की उपस्थिति में ही संभव है, पर जब कोई कार्य कारण बिना संभव हो तब ? विज्ञान के पास उसका कोई जबाव नहीं। वह ऐसी क्रियाएँ नहीं मानता पर सृष्टि में यह भी होता है, तब मानना पड़ता है कि सृष्टि में सब कुछ स्थूल-पदार्थों का ही अस्तित्व नहीं, स्थूलोत्तर चेतन अस्तित्व भी है और स्थूल से कहीं अधिक सशक्त हैं।

अमरनाथ इस बात का प्रत्यक्ष उदाहरण है। अमावस्या के दिन उस बिंदु पर कुछ भी नहीं होता, जहाँ उसके दूसरे ही दिन से चंद्रकला की दशा के ही अनुसार एक हिम शिवलिंग का विकास प्रारंभ हो जाता है और बढ़ते-बढ़ते यही पूर्णमासी के दिन पूर्ण शिवलिंग का रूप ले लेता है। अमरनाथ अत्यधिक शीत प्रदेश है। वहाँ साल भर बर्फ जमी रहती है। श्रावण के महीने में वहाँ की बर्फ कम होती है। मौसम भी कुछ अनुकूल हो जाता है। तब हजारों दर्शनार्थी वहाँ जाकर इस अद्‌भुत शिवलिंग के दर्शन करते हैं। शिवलिंग के पास ही और भी मूर्तियाँ जमती हैं; उनको पार्वती जी, गणेशजी और कार्तिकेय जी मानकर पूजन किया जाता है। अमरनाथ के इस विचित्र रहस्य के कारण की खोज आज तक कोई भी नहीं कर सका। जो भी उसे देखता है, ईश्वर की महिमा कहकर सिर झुका लेता है।

अमेरिका के केंटकी राज्य में मैमथ नामक प्राकृतिक गुफा है। इसे मनुष्यों ने नहीं बनाया, प्रकृति ने अपने आप बनाया, उसकी कारीगरी देखते ही बनती है। डिजाइनदार खंबे और कमरे कोई २०० मील लंबे क्षेत्र में फैले हुए हैं। इसी में कई तालाब और नाले भी हैं; जिसमें जल विहार भी किया जा सकता है। घनघोर अंधकार वाली इस गुफा का आश्चर्य उसकी दीवारें हैं। अनुमानतः कई दीवारें तो इसमें पाँच मंजिल की इमारत जितनी ऊँची हैं। जो कार्य किसी इंजीनियर से हो सकता है, वह प्रकृति ने अंतःप्रेरणा से

करके यह दिखा दिया कि उसमें किसी भी योग्यतम इंजीनियर से बढ़कर ही बुद्धि और शक्ति है।

काँगड़ा जिले के डाडा सीखा गाँव की एक खंड को खोदने पर एक पत्थर मिला। पत्थर किसी इमारत या पुरातत्त्व विभाग का दबा हुआ टुकड़ा न होकर विशुद्ध खनिज था। पर जब उसे बाहर निकाला गया तो लोग आश्चर्यचकित रह गए और उस पत्थर में एक चिड़िया का हूबहू चित्रांकित है। चोंच, पूँछ, पंजे सारे अवयव ठीक किसी चित्रकार द्वारा विनिर्मित जैसे ही है; उसे देखने के लिए हजारों की भीड़ जमा रहती है, लोग समझ नहीं पा रहे—जहाँ हवा पहुँचती नहीं; जहाँ खाने-पीने के नाम पर मिट्टी ही मिट्टी है, उस अंतराल में दबी यह प्रकृति आखिर किस तरह चित्र बनाती रही ? कारण कुछ भी हो प्रकृति ने इस उदाहरण से सिद्ध कर दिया कि वह इंजीनियर ही नहीं कुशल चित्रकार भी है।

अमेरिका के पश्चिमी भाग में स्थित "येलोस्टोन नेशनल पार्क" जाने का अवसर मिले तो वहाँ का "ओल्ड फेथफुल" गीजर अवश्य देखना चाहिए। पृथ्वी के भीतर से प्राकृतिक तौर पर निकलने वाले फौवारों को "गीजर" कहते हैं। भूगर्भशास्त्रियों का कथन है कि पृथ्वी के गर्भ में जलराशि की छिपी तहें हैं। जो तहें ज्वालामुखी पहाड़ों के पास हैं, वह कभी-कभी ज्वालामुखी अग्नि ताप के संपर्क में आ जाती हैं। यह तापमान उस पानी को उबालने लगता है। भाप मिश्रित होने के कारण वह धरती को फोड़कर निकल पड़ता है और पृथ्वी से बाहर गर्म फौवारे के रूप में फूट पड़ता है।

ज्वालामुखी की आग हो अथवा धरती के भीतर का पानी, सब प्रकृति के ही विभाग हैं, इसलिए इस सकारण दृश्य को भी प्रकृति का ही खेल कहा जा सकता है; पर जैसा कि नाम से ही स्पष्ट है, यह गीजर अपने आप में विचित्रता लिए हुए है। वह यह है कि यह लगभग एक घंटे के अंतर से बराबर छूटता रहता है

और इस तरह वह सिद्ध करता है कि प्रकृति को समय और नियमितता का भी ज्ञान है।

आयरलैंड के कार्क नगर में पाए जाने वाले ब्लार्नी पत्थरों के चमत्कारिक गुण की चर्चा करना अनुपयुक्त न होगा। "ब्लार्नी" शब्द का अर्थ है—वाक्पटुता, जैसा कि नाम से स्पष्ट है—इस पत्थर के बारे में कहा जाता है कि इसे जो भी चूम लेता है, उसमें बोलने की सामर्थ्य का चमत्कारिक विकास होता है। यह पत्थर बैनकबर्न की लड़ाई के अवसर पर, जबकि जनरल मैकार्थी ने राबर्ट ब्रूस की सहायतार्थ पाँच हजार सैनिक दिए थे, राबर्टब्रूस ने ये उपहार स्वरूप मैकार्थी को दिया था। मैकार्थी ने उसे अपने किले की बुर्ज पर जड़वा दिया था। आज भी हजारों पर्यटक प्रतिवर्ष कार्क शहर केवल इस पत्थर को चूमने और प्रकृति के अद्भुत प्रभाव से लाभान्वित होने के लिए जाते हैं।

■ हजारों वर्ष की आयु वाले पेड़

एलोविले—नारमैंडी (फ्रांस) में एक ओक का वृक्ष है, जिसकी आयु लगभग १ हजार वर्ष हो चली। वृक्ष की विशालता और उसके तने की राक्षसी मोटाई देखकर एक अँग्रेज के मन में उसको एक जगह खोखला करके गिरजाघर बनाने की बात सुनाई। उसने अपने विचार को क्रियान्वित भी किया। एक दो मंजिला गिरजाघर इस विशाल वृक्ष के तने में बनाया गया, जो १६६६ से लेकर अब तक ज्यों का त्यों बना हुआ है। एक ओर गिरजाघर में बैठकर पूजा उपासनाएँ चलती रहती हैं; दूसरी ओर वृक्ष भी ऋतु के अनुसार फलता-फूलता रहता है। तने के भीतर बना गिरजाघर आश्चर्य हो गया; पर उस वृक्ष के नियंता को किसी ने भी आश्चर्य से नहीं देखा। यह ऐसा ही है जैसे लोग विराट् ब्रह्मांड में समुद्र की एक बूँद के समान पृथ्वी को ही सब कुछ मानते हैं; विराट् जगत् की कल्पना, उन्हें कभी नए ढंग से सोचने की प्रेरणा ही नहीं देती।

बारजक विवारेस में पियरे डिफोरनेल नामक एक ऐसा व्यक्ति हुआ, जिसको तीन शताब्दियों का पिता माना गया है। १२६ वर्ष जीकर मरने वाले इस किसान ने तीन विवाह किए, तीनों पत्नियों से उसे तीन पुत्र हुए। पहला पुत्र हुआ १६६६ में अर्थात् १७वीं शताब्दी में, दूसरा १७३८ अर्थात् १८वीं शताब्दी में, तीसरा बेटा जन्मा तब उसकी आयु १२० वर्ष की थी। यह सन् १८०१ की बात है अर्थात् १६वीं शताब्दी की। इस बच्चे के ६ वर्ष बाद भी वह स्वस्थ जीवन जिया और अपने आपको 'वंडर बुक ऑफ स्ट्रेंज फैक्टस्' (अजनबी सच्चाइयों की आश्चर्यजनक पुस्तक) में उल्लेख होने का पात्र बनाया; किंतु इस वृक्ष की, जो हजार वर्ष से खड़ा है, इस बेचारे मनुष्य से क्या तुलना ! फिर क्यों न यह माना जाए कि प्रकृति का मस्तिष्क मानवीय मस्तिष्क से कहीं अधिक सूक्ष्म और विशाल है।

प्रकृति के रहस्य अगम है और उससे भी अगम्य रहस्यपूर्ण हैं चेतन संसार। प्रकृति जब तक मनुष्यों के सामने इस प्रकार की चुनौती भरे प्रश्न खड़े करती रहती है, जिन्हें लाख प्रयत्न पर भी बुझा नहीं जा सकता। यह नहीं कहा जा रहा है कि इन रहस्यों को कभी सुलझाया ही न जा सकेगा। संभव है आगे चलकर दिलदार पत्थर और संगीतकार रेत का रहस्य सुलझा लिया जाए; परंतु फिर भी ऐसी कितनी ही विचित्रताएँ हैं, जिन्हें पूरी उम्र तो क्या एक पूरा युग कल्प लगाकर भी नहीं समझा जा सकता। अभी तो यही ठीक से जान पाना संभव नहीं हुआ कि प्रकृति में क्या-क्या है ? उसके संपूर्ण रहस्यों को समझ पाना तो दूर की बात रही।

जब प्रकृति ही इतनी रहस्यपूर्ण और विचित्र है, तो सूक्ष्म चेतना कितनी रहस्यमय होगी ? चेतन तत्त्व कितना गूढ़ होगा ? आत्मसत्ता और परमात्मसत्ता के रहस्यों का क्या अनुमान लगाया जा सकता है ? और मनुष्य अपनी छोटी-सी बुद्धि से उसे समझने तथा उसकी सत्ता को कपोल-कल्पना सिद्ध करने का दावा किस आधार पर कर सकता है ?

❐ ❐

अद्‌भुत जगत् का अद्‌भुत रहस्य

❋

कई बार दृश्य के अदृश्य में और अदृश्य के दृश्य में परिणत होने की घटनाएँ घटित होती रहती हैं और वे इतने विचित्र होती हैं कि उन्हें भूत-प्रेत, देवी-देवता की करतूत, सिद्धि, चमत्कार अथवा अतींद्रिय चेतना की अनुभूति आदि कहकर मन समझाना पड़ता है। वास्तविकता क्या है ? इसका सही पता लगा सकना और उन अद्‌भुत घटनाओं का समाधान कर विश्लेषण कर सकना प्रायः संभव नहीं हो पाता।

इस संदर्भ में आए दिन जहाँ-तहाँ घटित होने वाली घटनाओं में से दो इस प्रकार हैं—

मनीला की यू० पी० आई० नामक प्रामाणिक समाचार ऐजेंसी ने पूरी खोज-बीन के पश्चात् एक समाचार प्रकाशित कराया था कि कार्नेलियो क्लोजा नामक एक बारह वर्षीय छात्र जब-तब अनायास ही अदृश्य हो जाता है। स्कूल के क्लास से गायब हो जाना और दो-दो दिन बाद वापस लौटना आरंभ में लड़के की चकमेबाजी समझा गया; किंतु पीछे उसके दिए गए ब्यौरे पर ध्यान देना पड़ा। वह कहता था, कोई समवयस्क परी जैसी लड़की उसे खेलने के लिए पास बुलाती है और वह रुई की तरह हलका होकर उसके साथ खेलने, उड़ने लगता है।

पुलिस ने बहुत खोज-बीन की। उस पर विशेष पहरा बिठाया गया। यहाँ तक कि उसके पिता ने कमरे में बंद रखा तो भी उसका गायब होना नहीं रुका। पीछे किसी पादरी के मंत्रोपचार से वह संकट दूर हुआ।

इसी तरह की एक घटना का फ्रांसीसी वैज्ञानिक सेतारियर ने भी उल्लेख किया है। उनकी विश्वसनीयता पर किसी को उँगली उठाने का साहस नहीं हो सकता। उसने एक घटना का उल्लेख किया है—पैरिस की एक प्राचीन प्रतिमा की जब वैज्ञानिकों का एक

दल परीक्षा कर रहा था, तो वह मूर्ति देखते-देखते अदृश्य हो गई और उसके स्थान पर एक दूसरी विशालकाय मूर्ति आ विराजी जो पहली की तुलना में कहीं बड़ी थी।

यह घटना अभी बहुत पुरानी नहीं हुई है, जिसमें टेनेसी राज्य के गालटिन नगर के एक धनी किसान डेविड लेंग के अचानक गायब हो जाने के समाचार ने दूर-दूर तक आतंक पैदा कर दिया था और उस संबंध में भारी जाँच-पड़ताल हुई थी। वह किसी जरूरी काम से घर से बाहर जा रहा था कि देखते-देखते आँखों के सामने से अदृश्य हो गया और फिर कभी नहीं लौटा। कोई ऐसी बजह भी नहीं थी, जिससे वह जान-बूझकर भाग जाता। हँसता-हँसाता यह कहकर घर से निकला था कि "अभी दस मिनट में आता हूँ।" जिस स्थान से वह गायब हुआ था कि उसके आस-पास पंद्रह फुट के घेरे की घास बुरी तरह झुलस गई थी। पुलिस तथा दूसरे खोजी सिर तोड़ प्रयत्न करने पर भी उसका कुछ पता न लगा सके।

ऐसी घटनाओं की विवेचना करते हुए वैज्ञानिक क्षेत्रों में कई प्रकार से चर्चा होती रहती है। अब विज्ञान इस निश्चय पर पहुँच चुका है कि मनुष्य की इंद्रिय चेतना के आधार पर विकसित बुद्धि जितना जान पाती है, दुनिया वस्तुतः उससे कहीं अधिक है। उसे न बुद्धि समझ पाती है और न मानव निर्मित यंत्र ही उसे पूरी तरह पकड़ पाते हैं। फिर भी कुछ विशेष सूक्ष्म संवेदना वाले यंत्र थोड़ी-बहुत जानकारी कभी-कभी देते रहते हैं और यह सिद्ध करते हैं कि प्रत्यक्ष दर्शन न केवल अधूरा वरन् भ्रामक भी है।

हम नित्य ही सूर्य की 'धूप' को देखते हैं। पर सचाई यह है कि धूप कभी भी नहीं देखी जा सकती। उसके प्रभाव से प्रभावित पदार्थ विशेष स्तर पर चमकने लगते हैं, यह पदार्थों की चमक है। सूर्य की किरणें, जो इस चमक का प्रधान कारण हैं, हमारी दृश्य शक्ति से सर्वथा परे हैं। अंतरिक्ष में प्रायः पूरे सौरमंडल को प्रकाशित एवं प्रभावित करने वाली धूप वस्तुतः सोलर

स्पेक्ट्रम—सौरमंडलीय वर्ण क्रम है। उसे ऊर्जा की तरंगों एवं स्फुरणाओं की एक सुविस्तृत पट्टी कह सकते हैं। इस पट्टी में प्रायः १० अरब प्रकार के रंग हैं। पर उनमें से हमारी आँखें लाल से लेकर बैंगनी तक एक-एक रंग सप्तक की तथा उसके सम्मिश्रणों को ही देख पाती हैं। बाकी सारे रंग हमारे लिए सर्वथा अदृश्य, अपरिचित और अकल्पनीय हैं।

अब हम कुछेक सूक्ष्म किरणों की किन्हीं विशेष यंत्रों की सहायता से देख-समझ सकने में थोड़ा-थोड़ा समर्थ होते जाते हैं। जैसे धूप में "इन्फ्रारेड" तरंगें देखी तो नहीं जातीं, पर जलन के रूप में अनुभव होती हैं। इन किरणों का फोटोग्राफी में प्रयोग करके दुनिया का वास्तविक रंग विचित्र पाया गया है। घास-पात, पेड़-पौधे वस्तुतः बिल्कुल सफेद हैं, आसमान समुद्र बिल्कुल काले, जबकि पत्तियाँ हरी और आसमान तथा समुद्र नीले दीखते हैं। इन किरणों की सहायता से अमेरिका ने क्यूबा में लगे रूसी प्रक्षेपणास्त्रों के फोटो हवाई जहाज में खींचे थे। आश्चर्य यह कि उसमें वे उन जलती सिगरेटों के फोटो भी आ गये, जो २४ घंटे पहले वहाँ के कर्मचारियों ने जलाई थीं और वे तभी बुझ भी गई थीं। दृश्य जगत् में पदार्थ समाप्त हो जाने पर भी वह अंतरिक्ष में अपनी स्थिति बनाए रह सकता है, यह अजूबा हमें भूत और वर्तमान के बीच खिची हुई लक्ष्मण रेखा से आगे बढ़ा ले जाता है। जो वस्तु अपने अनुभव के अनुसार समाप्त हो गई। वह भी अंतरिक्ष में वर्तमान की तरह यथावत् मौजूद है, यह कैसी विचित्रता है ?

ट्रेवर जेम्स ने इन्फ्रारेड मूवी फिल्म के लिए प्रयुक्त होने वाले एक विशेष कैमरे आई० आर० १३५ का उपयोग करके मोजावे रेगिस्तान के अंतरिक्ष की स्थिति चित्रित की है। फिल्म में ऐसे पक्षी दिखाई पड़ते हैं, जो अपनी आँखों से कभी भी दिखाई नहीं पड़ते।

जीवाणुओं की अपनी अनोखी दुनिया है; वे मिट्टी, घास-पात, पानी और प्राणियों के शरीरों में निवास करते और अपने ढर्रे की मजेदार जिंदगी जीते हैं। पर हम उनमें से कुछ को ही सूक्ष्मदर्शी

यंत्रों से देख पाते हैं। बाकी तो इतने सूक्ष्म हैं कि किसी भी यंत्र की पकड़ में नहीं आते किंतु अपने क्रिया-कलाप बड़ी शान के साथ जारी रखते हैं।

शास्त्रकार ने उसे **"अणोरणीयान् महतो महीयान्"** कहा है। परमाणु से भी गहरी—उसकी संचालनकर्त्री सूक्ष्मता को देखा और जाना तो नहीं जा सका, पर उसका आभास पा लिया गया है। महतो महीयान् की बात भी ऐसी ही है। विशालकाय ग्रहपिंड और नीहारिका समुच्चय अत्यंत विशाल है; इतना विशाल जिसकी तुलना में अपना सौरमंडल बाल बराबर भी नहीं है। फिर भी वह सब, कुछ अधिक दूरी होने के कारण दीखता नहीं। रेडियो, दुरबीनें जिन आकाशीय पिंडों का परिचय देती है; वह आँखों से देखे जा सकने वाले सितारों की तुलना में अत्यधिक विस्तृत हैं। आश्चर्य यह है कि यह रेडियोदूरबीन पूरी धोखेबाज है, वे अब से हजारों लाखों वर्ष पुरानी उस स्थिति का दर्शन कराती है, जो संभवतः अब आमूलचूल ही बदल गई होंगी। संभव है वे तारे बूढ़े होकर मर भी गये हों, जो हमारी रेडियोदुरबीनों पर जगमगाते दीखते हैं।

अल्ट्रा वायलेट फोटोग्राफी से ऐसे प्राणियों के अस्तित्व का पता चलता है, जो हमारी समझ, परख और प्रामाणिकता के लिए काम में लाई जाने वाली कसौटियों के ऊपर हैं। इन प्राणियों को 'प्रेत मानव' अथवा 'प्रेत प्राणी' कहा जाए तो कुछ अत्युक्ति न होगी। अब हमारे परिवार में यह अदृश्य प्राणधारी भी सम्मिलित होने आ रहे हैं। सूक्ष्म जीवाणु की तरह उनकी हरकतें और हलचलें भी अपने अनुभव की सीमा में आ जाएगी।

हर्वर्ट गोल्डस्टीन ने अपने शोध निबंध "प्रापगेशन ऑफ शार्ट रेडियो वेव्स" में यह सिद्ध करने का प्रयत्न किया है कि वायुमंडल में संव्याप्त अपवर्तनांक प्रवणता के पर्दे से पीछे अदृश्य प्राणियों की दुनिया है। वह दुनिया हमारे साथ जुड़ी हुई है और दृश्यमान सहचरों से कम प्रभावित नहीं करती। वर्तमान सूक्ष्मदर्शी साधन अपर्याप्त है, तो भी हमें निराश न होकर ऐसे साधन विकसित करने

चाहिए, जो इस अति महत्त्वपूर्ण अदृश्य संसार के साथ हमारी अनुभव चेतना का संबंध जोड़ सकें।

साधारणतया हमारी जानकारी पदार्थ के तीन आयामों तक सीमित है—लंबाई, चौड़ाई और ऊँचाई। अब इसमें "काल" को चौथे आयाम के रूप में सम्मिलित कर लिया गया है। आइन्स्टीन ने अपने सापेक्षवाद सिद्धांत की विवेचना करते हुए यह समझाने का प्रयत्न किया है कि भौतिक संसार वस्तुतः **"संयुक्त, चतुर्विस्तारीय दिक् काल जगत्"** है। वे देश और काल की वर्तमान मान्यताओं को एक प्रकार से सापेक्ष और दूसरे प्रकार से अपूर्ण, अवास्तविक मानते हैं।

कैलीफोर्निया विश्वविद्यालय के डॉ० रावर्ट सिरगी अपने दल के साथ ऐसे उपकरण बनाने में संलग्न हैं, जिनसे पदार्थ के चौथे आयाम को समझ सकना संभव हो सके। वे कहते हैं, जो हम जानते और देखते हैं, उनसे आगे की गतियाँ और दिशाएँ मौजूद हैं, हम केवल तीन आयामों की परिधि में आने वाले पदार्थों का ही अनुभव कर पाते हैं; जबकि इससे आगे भी एक विचित्र दुनिया मौजूद है। उस विचित्रता को समझे बिना हमारी वर्तमान जानकारियाँ बाल-बुद्धि स्तर की ही बनी रहेंगी।

दृश्य का अदृश्य बन जाना और अदृश्य का दिखाई देने लगना मोटी बुद्धि से बुद्धि भ्रम अथवा कोई दैवी चमत्कार ही कहा जा सकता है। इतना होते हुए भी एक ऐसे सूक्ष्म जगत् का अस्तित्व मौजूद है, जो अपने इस ज्ञात जगत् की तुलना में न केवल अधिक विस्तृत, वरन् अधिक शक्तिशाली भी है। भूतकाल में उसे सूक्ष्म जगत् एवं दिव्य-लोक कहा जाता रहा है। उसमें पदार्थों का ही नहीं प्राणियों का भी अस्तित्व मौजूद है। वे प्राणी मनुष्य की तुलना में बहुत छोटे भी हो सकते हैं और बहुत बड़े भी। आवश्यकता एवं परिस्थितियाँ उनकी भी हो सकती हैं और जिस प्रकार हम उस सूक्ष्म जगत् के साथ संबंध जोड़ने को उत्सुक हैं, उसी प्रकार वे भी हमारे सहचरत्व के लिए इच्छुक हो सकते हैं।

प्राणियों और पदार्थ का लुप्त एवं प्रकट होते रहना, इन स्थूल और सूक्ष्म जगत् के बीच होते रहने वाले आदान-प्रदान का एक प्रमाण हो सकता है।

सुप्रसिद्ध विज्ञान कथा लेखक एच० जी० वेल्स ने अपनी एक पुस्तक "दि इनविजिविल मैन' अदृश्य मानव में उन संभावनाओं पर प्रकाश डाला है, जिनके अनुसार कोई दृश्य पदार्थ या प्राणी अदृश्य हो सकता है और अदृश्य वस्तुएँ दृष्टिगोचर होने लग सकती हैं। इस विज्ञान की उन्होंने अपवर्तनांक—रिफ्रैक्टिव इंडिसेंस—नाम देकर उसके स्वरूप एवं क्षेत्र का विस्तृत वर्णन किया है।

हम ज्ञात को ही पर्याप्त न मानें। प्रत्यक्ष को ही सब कुछ न कहें। प्रस्तुत मस्तिष्कीय और यांत्रिक साधनों को सीमित मानकर न चलें और जो अविज्ञात हैं, उसकी शोध में बिना किसी पूर्वाग्रह के लगे रहें, तो इस अणोरणीयान महतो महीयान् जगत् के वे रहस्य जानने की दिशा में अग्रसर हो सकते हैं, जो अभी तक नहीं जाने जा सके।

■ कोई भी अकेला नहीं

कई बार ऐसी घटनाएँ देखने को मिलती हैं कि उनके कारणों को लेकर बुद्धि चकरा जाती है। 'भूमध्य सागर' में स्थित ४५ मील लंबा और बीस मील चौड़ा एक द्वीप है—मार्टीनिक; यह द्वीप ऊँचे पर्वतों और सघन वनों से घिरा हुआ है। उनमें से एक सबसे ऊँचे पर्वत शिखर माउंट पेली के उत्तरी सिरे पर एक ज्वालामुखी, ला मांतेन बहुत दिनों में अपना अस्तित्व बनाए हुए है। इस द्वीप का प्रमुख नगर है—सेंट पियरे।

यह ज्वालामुखी अठारहवीं सदी में प्रकट हुआ था। सन् १८५१ के छोटे विस्फोट की भी लोगों को याद थी। उसमें गर्जन-तर्जन ही दिखाया था, कभी कोई बड़ी हानि नहीं पहुँचाई थी। पर सत्तर वर्ष पूर्व सन् १९०२ में तो वह ऐसा मचला कि एक प्रकार से उस क्षेत्र के लिए प्रलय ही उपस्थित कर दी।

२३ अप्रेल को अचानक ला मांतेन सक्रिय हुआ। माउंट पेली के पश्चिमी और दक्षिणी ढलान पर राख और अंगारे बरसने शुरू हुए। भूकंप जैसे झटके लगे। दो दिन बाद ज्वालामुखी उग्र हो उठा। चट्टानें लाल पड़ गईं। आग का भयंकर गुब्बारा फूट पड़ा। राख की दूर-दूर तक वर्षा होने लगी। सेंट पियरे नगर के निवासी गर्मी से अकुलाने लगे। पर वे सोचते यही रहे कि यह कोई सामयिक घटना है। दो-चार दिन में सब कुछ अपने आप ठीक हो जाएगा।

दो सप्ताह तक ऐसी ही गड़बड़ चलतीं रही। ७ मई को प्रभात होने भी न पाया था—माउंट पेली ने भयंकर रूप से गर्जन आरंभ कर दिया और ज्वालामुखी से रंग-बिरंगी ज्योति किरणें चमकने लगीं। समुद्र में भारी तूफान आया। चट्टानें और मिट्टी उछल-उछल कर चारों ओर बिखर गये। समुद्र तट पर हजारों टन मछलियों की लाशें जमा हो गईं।

इस स्थिति में नागरिक चिंतित तो थे, पर यह किसी को आशा न थी कि स्थिति में कुछ असाधारण या अप्रत्याशित हो उठेगी। देहात से ग्रामीण जनता भागकर शहर को आ रही थी, उसका ख्याल था कि शहर अधिक सुरक्षित होते हैं। स्थिति बिगड़ती देखकर तत्कालीन गवर्नर मौट्टेत ने स्थिति का अध्ययन करने के लिए एक समिति नियुक्त की उसने भी यह निष्कर्ष निकाला कि बड़े खतरे जैसे कोई बात नहीं है।

सबेरे के आठ बजे। ज्वालामुखी का मुँह फटा। घनी काली भाप तोप जैसी कर्णभेदी ध्वनि के साथ निकली और आकाश में दूर-दूर तक छा गई। काली छतरी की तरह घोर अंधकार उत्पन्न करती हुई वह गिलगिली भाप तेजी से उठी और उसने एक प्रकार से अपनी चादर में सारा ही क्षेत्र ढक लिया। लोग हक्का-बक्का हो गये। क्या हो रहा है ? क्या होने वाला है ? क्या किया जाए ? यह किसी की समझ में कुछ भी नहीं आ रहा था।

उबलती हुई भाप ने जल प्रलय जैसा रूप बनाया और वह इस तरह दौड़ी मानो नगर को निगल जाना ही उसका लक्ष्य हो।

आगे-आगे धूल उड़ रही थी, पीछे धुआँ उमड़ रहा था। उससे आग की लपटें और रंग-बिरंगी बिजली जैसी चमक उठ रही थी। उसके पीछे भाप का तूफान लहराता चला आ रहा था। देखते-देखते उसने सारे नगर को अपनी कुंडली में कस लिया। भट्टी में पड़े हुए लकड़ी के टुकड़े की तरह सारा नगर अपनी शोभा-सुषमा को खोकर अग्निमय हो गया।

तूफान की भयानकता रोमांचकारी थी। बंदरगाह पर खड़े जहाज उलटकर डूब गये। जो डूबने से बच गए उन्होंने अपने लंगर खोल दिए और लड़खड़ाते हुए खुले समुद्र में किसी भी ओर भागे। जो तट से दूर थे, उन्होंने अपने कदम पीछे मोड़ लिए।

विस्फोट इतना तीव्र और इतना आकस्मिक था कि उस द्वीप के निवासी कई घंटों तक यह समझ ही न सके कि यहाँ क्या हो रहा है ? गवर्नर ने गश्ती जहाज को स्थिति का पता लगाने भेजा तो जलते हुए सेंट पियरे तक पहुँच सकना उसके लिए भी संभव न हो सका। शक्तिशाली दुरबीनों से सिर्फ इतना देखा, जाना जा सका कि नगर एक चिता की तरह जलकर बुझने की स्थिति में मुरझाता जा रहा था। राडडम जहाज का कप्तान अपने जहाज को भगाकर पड़ौस के द्वीप सेंट लूशिया के कैस्ट्रीज बंदरगाह के लिए ले जाने लगा तो गर्मी से उसके हाथों का मांस लटक पड़ा। बाईस नाविक तो डेक पर ही झुलसकर मर गए।

तूफान में जब हलकापन आया और स्थिति का लेखा-जोखा लिया गया तो पता चला कि तीस हजार की आबादी में तीन व्यक्ति जले-भुने सिसकते मिले, जो कुछ ही घंटे बाद मर गए।

इस समस्त नगर में एक ही व्यक्ति जीवित बचा। वह था जेल में कैद पच्चीस वर्षीय आगस्त सिल्वेरियस। उसे यातनापूर्ण कैद की सजा मिली थी और जमीन के नीचे एक कोठरी में बंद करके रखा गया था। इस कोठरी में हवा के लिए एक छोटा-सा छेद दरवाजे के पास था। तीन दिन बाद जब नगर की खोज-खबर लेना संभव हुआ तो जेलखाने के खंडहरों में से किसी के कराहने

की आवाज आई। मलवा खोदकर निकाला गया तो 'आगस्त' जीवित बचा हुआ पाया गया।

विस्फोट ने सेंट पियरे नगर को पूरी तरह निगल लिया। इसके आगे वाला क्षेत्र में भी जीवित प्राणी कोई नहीं बचा, पर वहाँ तक प्रवाह हलका हो जाने से संपति की हानि उतनी नहीं हुई। इसके बाद में वृक्ष वनस्पति जल गए, मनुष्यों ने भागकर अपनी जान बचा ली। मृत्यु का प्रवाह कुछ ऐसा विचित्र बहा कि जहाँ एक रेखा का सब कुछ नष्ट हो गया, वहाँ उसके पास की सीमा रेखा में किसी का कुछ भी नहीं बिगड़ा। अनुमान किया जाता है कि उस विस्फोट में कम से कम २००० डिग्री फारेन हाइट गर्मी थी। भाप और धुएँ के साथ उतने घातक और विषैले पदार्थ भरे थे कि उनकी चपेट में जो भी आया बच न सका। विस्फोट की गैस ने उस क्षेत्र के अधिकांश लोगों के स्वास्थ्य पर घातक प्रभाव डाला और वे बहुत दिनों तक बीमारियों के ग्रास बने कराहते रहे।

आगस्त की जीवन रक्षा महज संयोग भी कहा जाता है। परंतु तथ्य से भी इनकार नहीं किया जा सकता कि मनुष्य अकेला नहीं, उसके साथ उसका भगवान् भी है, जिसे वह बचाता है, उसे इस तरह बचा लेता है जैसे इस प्रलंयकारी तूफान में समस्त नगर जल जाने पर भी सेंट पियरे का वह जर्मीदोज कैदी बच गया। मनुष्य ने तो उसे मारने में कोई कमी नहीं रखी थी। जिस स्थिति में उसे कैद कर रखा गया था, उसमें वह बहुत दिन तक जीवित नहीं रह सकता था, पर जब भगवान् को बचाना हुआ तो इस तरह बच गया, जिसे देखकर भौतिक नियमों को ही सब कुछ मानने वालों को चकित रह जाना पड़ता है।

प्रहलाद का जीवन क्रम ऐसा ही है। उसका पिता हिरण्य-कश्यपु, उसकी बुआ होलिका उसे मार डालने के लिये हर चंद प्रयत्न करते रहे, पर बचाने वाले ने बताया कि मनुष्य से भगवान् की शक्ति अधिक है। मारने वाला ही सब कुछ नहीं—बचाने वाला भी 'कुछ' है। कुम्हार के धधकते हुए अवे में से जब बिल्ली के बच्चे

जीवित निकले, तो प्रहलाद को विश्वास हो गया कि भौतिक नियमों से ऊपर भी कोई दिव्य नियम व्यवस्था मौजूद है और यदि यह सहायक हो तो बड़ी से बड़ी आपत्तियों का शमन हो सकता है।

संत कबीर ने इस सत्य को अधिक गहराई के साथ जाना था और उन्होंने हर किसी से कहा था—संसार के विरोध-अवरोध की चिंता न करके उस परम शक्तिशाली को पकड़ा जाए, जिसके अनुकूल रहने पर संसार की समस्त प्रतिकूलताएँ निरस्त हो जाती हैं। कबीर का एक दोहा याद रखने ही योग्य है—

जाको राखै साइयाँ, मार न सकता कोय।
बाल न बाँका कर सके, जो जग बैरी होय।।

सेंट पियरे की उस रोमांचकारी दुर्घटना में सब कुछ दुःखदायक दुर्घटना भरा चित्रण ही है, वहाँ एक प्रकाश की किरण भी विद्यमान है कि कोई समर्थ सत्ता ऐसी भी है, जो यदि चाहे तो घोर विभीषिकाओं के प्रस्तुत रहते—किसी को उबार सकती है।

हम ऐसी महान् सत्ता का मजबूती से पल्ला पकड़े तो उसमें अपना ही हित साधन है। वैसे भी कठिनाइयों से डरकर यदि हिम्मत हार बैठा जाए तो बात दूसरी है अन्यथा प्राणधारी की अदम्य जीवनेच्छा इतनी प्रबल है कि वह बुरी से बुरी परिस्थितियों में जीवित ही नहीं फलता-फूलता भी रह सकता है।

■ जीवन सभी परिस्थितियों में संभव

उत्तरी ध्रुव पर 'एस्किमो' नामक मनुष्य जाति चिरकाल से रहती है। वहाँ घोर शीत रहता है। सदा बर्फ जमी रहती है। कृषि तथा वनस्पतियों की कोई संभावना नहीं। सामान्य मनुष्यों को उपलब्ध होने वाले साधनों में से कोई नहीं फिर भी वे जीवित हैं। जीवित ही नहीं परिपुष्ट भी हैं। परिपुष्ट ही नहीं सुखी भी हैं। हम अपने को जितना सुखी मानते हैं, वे उससे कम नहीं कुछ अधिक ही सुखी मानते हैं और संतोषपूर्वक जीवनयापन करते हैं। जरा-सी

ठंड हमें परेशान कर देती है पर एस्किमो घोर शीत में आजीवन रहकर भी शीत से प्रभावित नहीं होते।

जीवनेच्छा जब तितीक्षा के रूप में विकसित होती है और कष्ट साध्य समझी जाने वाली परिस्थितियों से भी जूझने के लिए खड़ी हो जाती है, तो मानसिक ढाँचे के साथ-साथ शारीरिक क्षमता भी बदल जाती है और प्रकृति में ऐसा हेर-फेर हो जाता है कि कठिन समझी जाने वाली परिस्थितियाँ सरल प्रतीत होने लगें। वन्य प्रदेशों के निवासी—सभ्य शहरी लोगों की तुलना में जितने अभाव ग्रस्त हैं, उतने ही सुदृढ भी रहते हैं। परिस्थिति को अनुकूल बनाने का प्रयत्न तो करना ही चाहिए, पर परिस्थिति के अनुकूल अपने को ढालने की मनस्विता एवं तितीक्षा के लिए भी तत्पर रहना चाहिए।

जीव जगत् में यह प्रक्रिया जहाँ भी अपनाई गई है, वहाँ दृढ़ता बढ़ी है। पौधों में भी ऐसे साहसी मौजूद हैं, जिन्होंने घोर विपरीतता से जूझकर न केवल अपना अस्तित्व कायम रखा है, वरन् शोभा, सौंदर्य की संपदा का स्थान भी पाया है।

घोर विपरीत परिस्थितियों में स्वावलंबी जीवन जीने वाले पौधे पैदा होते हैं, जहाँ पानी का अभाव रहता है। उनकी आत्म निर्भरता यह सिद्ध करती है कि जीवन यदि अपनी पर उतर आए, तनकर खड़ा हो जाए, तो विपरीत परिस्थितियों के आगे भी उसे पराजित नहीं होना पड़ता।

अमेरिका के मरुस्थल में और दक्षिणी अफ्रीका में पाए जाने वाले कैक्टस इसी प्रकार के हैं। वे जल के अभाव में जीवित रहते हैं। रेतीली जमीन में हरे-भरे रहते हैं और सबको सुखा-जला डालने वाली गर्मी के साथ अठखेलियाँ करते हुए अपनी हरियाली बनाए रहते हैं।

विकट परिस्थितियों के बीच रहने के कारण कुरूप भी नहीं होते वरन् बाग उद्यानों में रहने वाले शोभा गुल्मों की अपेक्षा कुछ अधिक ही सुंदर लगते हैं। रेशम जैसे मुलायम, ऊन के गोले जैसे

दर्शनीय, गेंद, मुद्गर, सर्प, स्तंभ, ऊँट, कछुआ, साही, तीतर, खरगोश, अखरोट, कुकरमुत्ते से मिलती-जुलती उनकी कितनी ही जातियाँ ऐसी हैं, जिन्हें वनस्पति प्रेमी अपने यहाँ आरोपित करने में गर्व अनुभव करते हैं। पत्तियाँ इनमें नहीं के बराबर होती हैं, प्रायः तने ही बढ़ते हैं, पर उनकी ऊपरी नोंक पर ऐसे सुंदर फूल आते हैं कि प्रकृति के इस अनुदान पर आश्चर्य होता है, जो उसने इस उपेक्षित वनस्पति को प्रदान किया है।

पथरीली और रेतीली भूमि में असह्य सूर्य ताप के बीच, पानी का घोर अभाव सहते हुए भी यह पौधे जीवित रहते हैं और हरे-भरे बने रहते हैं। इन्हें रेगिस्तान का राजा कहा जाता है। पथरीली भूमि में दूसरे पौधे जीवित नहीं पाते, क्योंकि वहाँ मिट्टी तो होती नहीं। पौधों के लिए आवश्यक पानी कैसे ठहरे ? पानी के बिना पौधे कैसे जिएँ ?

कैक्टस पौधों की सचेतना ऐसी है कि वे पानी के लिए जमीन पर निर्भर नहीं रहते। जब वर्षा होती है, तब सीधे इंद्र भगवान् से अपनी आवश्यकता भर का पानी माँग लेते हैं और अपनी कोशिकाओं में भर लेते हैं। प्रधानतया तो यह जल भंडार तने में ही रहता है, पर यदि उस जाति में पत्ते निकले तो उसमें भी उसी तरह की जल संग्राहक कोशिकाएँ रहेंगी। यह तने पत्तियों की आवश्यकता भी स्वयं ही पूरी कर लेते हैं। सूर्य-नारायण से आवश्यक प्रकाश प्राप्त करते रहने की क्षमता भी अपने में बनाये रहते हैं। तने में भरा हुआ जल भंडार इतना प्रचुर होता है कि यदि लगातार छह वर्षों तक पानी न बरसे, इंद्रदेव रूठे रहें तो भी उनका एक तिहाई पानी ही मुश्किल से चुक पाता है।

सूर्य का ताप उनकी तरलता को भाप बनाकर उड़ा न ले जाए, इसके लिए उनका सुरक्षा आवरण बहुत मजबूत होता है। तनों का बाह्यावरण मोटा ही नहीं मजबूत भी होता है और

उसमें ऐसे एकमार्गी छेद होते हैं, जो सूर्य से प्रकाश तो ग्रहण करते हैं, पर अपनी तरलता बाहर नहीं निकलने देते।

कैक्टस जानते हैं कि अपनी सुरक्षा का प्रबंध आप किए बिना गुजारा नहीं। इस दुनिया में उनकी कमी नहीं जो दूसरों का उन्मूलन करके ही अपना काम चलाते हैं। इनके सामने नम्र सरल बनकर रहा जाए तो वे उस सज्जनता को मूर्खता ही कहेंगे और अनुचित लाभ उठायेंगे। भोले कहे जाने वालों का शोषण इसी प्रकार होता रहा है।

वे इस तथ्य से अवगत प्रतीत होते हैं। तभी तो अपनी सुरक्षा के लिए—आक्रमणकारियों के दाँत खट्टे करने के लिए उन्होंने उचित व्यवस्था की हुई है। दूसरों पर आक्रमण भले ही न किया जाए, पर अपनी सुरक्षा का इंतजाम रखनें और आक्रमणकारियों को बैरंग वापिस लौटाने की व्यवस्था तो करनी ही चाहिए। कैक्टस यह प्रबंध कर सकने के कारण ही इस दुरंगी दुनिया के बीच जीवित है।

कैक्टस के तनों पर नुकीले काँटे होते हैं। वनस्पति चर जाने के लालची पशु उनकी हरियाली देखकर दौड़े आते हैं, पर जब काँटों की किलेबंदी देखते हैं, तो चुपचाप वापिस लौट जाते हैं।

इन पौधों की रंग-बिरंगी विभिन्न प्रकृति की अनेक जातियाँ पाई जाती हैं। इनमें से फिना मैरी गोल्ड, मिल्क वीड, ओपाईन, पर्सलेन, स्पर्ज, जिकेनियम, डंजी मुख्य हैं। इनमें से कितने ही ऐसे होते हैं, जिनकी आकृति सुंदर प्रस्तर खंडों जैसी लगती है।

यह पौधे अब सब जगह शोभा-सज्जा के काम आते हैं। राजकीय उद्यानों में, श्रीमंतों के राजमहलों में, कला प्रेमियों में इनका बहुत मान है। इन्हें लगाए बिना कोई वनस्पति उद्यान अधूरा ही माना जाता है। सर्वसाधारण में भी इनकी लोकप्रियता बढ़ी है और हर जगह उन्हें मँगाया-सजाया जा रहा है।

संभवतः यह इनका दृढ़ता, कठोरता, स्वावलंबता और तितीक्षा जैसी विशेषताओं का ही सम्मान है।

मनुष्य जितना नाजुक बनता जायेगा उतना ही दुर्बल बनेगा और परिस्थितियाँ उस पर हावी होंगी। किंतु यदि दृढ़ता, तितीक्षा, कष्ट-सहिष्णुता और साहसिकता अपनाए रहे तो केवल शरीर वरन् मन भी इतना सुदृढ़ होगा, जिसके सहारे हर विपन्नता का सामना किया जा सके।

❐ ❐

पेड़-पौधों की विस्मयजनक गतिविधियाँ

*

रेल की पटरियों पर एक विद्युत् ट्रेन दौड़ी जा रही थी। ट्रेन छोटी-सी थी और उसमें आठ-दस डिब्बे से अधिक डिब्बे नहीं थे। यात्री भी बहुत थोड़े-से थे। ट्रेन चालू कर देने के बाद ड्राइवर भी इंजन छोड़कर पीछे के डिब्बे में जा बैठे थे। गाड़ी अपनी गति से चली जा रही थी कि रास्ते में खड़े एक पेड़ ने हुक्म दिया—'रुक जाओ।'

गाड़ी रुक गयी।

'पीछे की ओर चलो' वृक्ष ने ही आदेश दिया। गाड़ी पीछे चलने लगी। फिर दूसरे किनारे पर खड़े पेड़ ने कहा—'रुक जाओ।'

गाड़ी फिर रुक गयी। पेड़ ने गंतव्य दिशा की ओर चलने का आदेश दिया तो गाड़ी गंतव्य की ओर चल पड़ी।

यह पंक्तियाँ न किसी परी कथा से उद्धृत की गयी हैं और न ही किसी ने इस घटना को स्वप्न में देखा है। अब से कुछ वर्ष पूर्व न्यूजर्सी (अमेरिका) में हजारों दर्शकों ने यह प्रदर्शन देखा और प्रदर्शनकर्त्ता है इलेक्ट्रॉनिकी विशेषज्ञ पियरेणल साविन। प्रदर्शन से पूर्व साविन ने घोषणा की थी कि वे अपनी आंतरिक शक्ति को किसी भी पेड़ पर केंद्रित करके विद्युत् ट्रेन को आगे-पीछे दौड़ा सकते हैं। घोषणा को लोगों ने अविश्वास, कौतूहल और आश्चर्य के साथ सुना तथा हजारों की संख्या में निर्धारित स्थान पर पहुँचे, जहाँ सफलतापूर्वक घोषित कार्यक्रम पूरा किया गया। ट्रेन पटरियों पर थोड़ा आगे बढ़ती किनारे पर खड़े वृक्ष में कुछ हल-चल होती और ट्रेन एक विद्युत् का झटका खाकर रुक जाती। फिर पीछे दौड़ने लगती।

पेड़ के संकेतों-निर्देशों पर केवल रेलगाड़ी चल पड़ती हो इतना ही नहीं है। बल्कि ऐसे पेड़ भी हैं, जो स्वयं चलते-फिरते

और गति करते हैं। "नेचर मैगजीन" के सितंबर ६१ अंक में श्री हेनरिक हाज ने मैनग्रोव नामक एक ऐसे वृक्ष का उल्लेख किया है, जो यायावर जिंदगी बिताता है, परिव्राजकों की तरह घूम-घूम कर लोगों में कौतूहल, सौंदर्य और जीवन को मात्र प्रवास मानने की प्रेरणा देता रहता है।

"दि ट्री बैट वाक्स" शीर्षक से लिखे इस लेख को पढ़ने के बाद कुछ क्षणों के लिए "कैटर पिलर" जीव की बात याद आए बिना नहीं रही, यह जीव जब लार्वा की स्थिति में होता है तो उसकी आँखों के ऊपर से सींग की तरह बर्रों की मूँछ के समान दो बाल फूटते हैं। धीरे-धीरे यह बाल ऊपर बढ़ने शुरू होते हैं और कीड़ा एक पौधे की शक्ल में बदल जाता है। वृक्षों में जीवन और प्रकृति में चेतना का दिग्दर्शन कराने वाला यह बहुत ही कौतूहल-वर्द्धक उदाहरण है। चेतना शरीर छोड़कर बाहर जाने की अपेक्षा अंतर्मुखी होकर एक वृक्ष का रूप ग्रहण कर सकती है, तो शरीर छोड़कर, कुछ समय चेतन शरीर, परमाणुओं से बसे शरीर, जीन्स प्रसुप्त स्थित में रहकर नव-जीवन धारण की शक्ति-संग्रह कर वृक्ष वनस्पति का रूप धारण करते हों, तो उसमें आश्चर्य क्या ? भारतीय योग दर्शन में जीवन की जड़ अवस्था को ही वृक्ष का रूप बताया है; आत्म चेतना की दृष्टि से मानव सत्ता और वनस्पति सत्ता में कुछ अंतर नहीं है। यह वृक्ष उस प्रतिपादन की अगली शृंखला को भी पूरा कर देता है अर्थात् आत्मसत्ता वाली वस्तु को गतिशील होना चाहिए। वृक्षों के गतिशील होने का यह प्रत्यक्ष उदाहरण है।

इस घुमक्कड़ वृक्ष भैन गाँव की जन्मभूमि मियामी, फ्लोरिडा तथा बिस्कैनीवी की खाड़ी है। फ्लोरिडा के कुछ वृक्ष वहाँ से १००० मील का समुद्री सफर तय करके, पेनिनसुला तक तथा कैरेबियन समुद्र से होकर प्रशांत और हिंद महासागर के तट तक फैलकर इन्होंने "चरैवेति-चरैवेति" के शास्त्रीय अभिमत का पालन किया है। संभवतः अपने इस गतिशील स्वभाव के कारण ही यह रोग-शोक से

मुक्त परमात्मा की सृष्टि के मात्र दृष्टा होने का आनंद लेते रहते हैं।

समुद्र का सौंदर्य बढ़ाने वाले इस मैनग्रोव के लिए जीवन व्यवस्थाएँ समुद्र से उसे स्वयं मिल जाती हैं। खारे पानी में अन्य वृक्ष उसी तरह नहीं पनप सकते, जिस तरह हर क्षण सुविधाओं के परावलंबी थोड़ी-सी कठिनाइयों से ही घबड़ा उठते हैं; दूसरी ओर उसी पानी में यह वृक्ष अपना गुजारा आसानी से कर लेते हैं। शुद्ध पानी की कमी को यह पौधे अपनी पत्तियों में संचित जलकणों से उसी तरह पूरी कर लेते हैं, जिस तरह मरुस्थल के ऊँट शरीर में बनी थैली में संचित जल से।

यह वृक्ष प्रारंभ में तट के कीचड़ वाले भागों में पैदा होता है। विचारवान् व्यक्तियों के द्वारा इंद्रिय लिप्सा और सांसारिक सुखों से विरक्ति की तरह यह पौधे ठंडक में ठिठुरते रहने की अपेक्षा परिव्राजक की उष्णता का आनंद लेते हुए, वहाँ समुद्र की ओर चल देते हैं। इनकी जड़ों में एक विलक्षण प्रक्रिया होती है, ऊपर से हवा कीचड़ के भीतर जड़ को जाती है, जिससे जड़ों में उस तरह की क्रिया होती है; जिस तरह रेंगने वाले कीड़े अपनी पीठ वाले हिस्से को उठाकर चिमटी की-सी आकृति बना लेते हैं। फिर सिर की तरफ का भाग आगे बढ़ाते हैं। इसी तरह वे एक लंबी यात्रा करते रहते हैं। सामान्य अवस्था में मैनग्रोव की जड़ें जहाज द्वारा लंगर डाल देने के समान कीचड़ को पकड़े रहती है और वायु द्वारा कीड़े की तरह जड़ें आगे भी बढ़ती रहती हैं। यह गति यद्यपि मंद होती है, पर कुछ ही समय में वे जाने कहाँ से कहाँ चले जाते हैं ? बुद्ध द्वारा आपातकालीन प्रव्रज्या आंदोलन के लिए सैकड़ों परिव्राजक एक साथ धर्म-चक्र-प्रवर्तन के लिए झोंका देने का परिणाम यह हुआ कि उस समय विकराल रूप धारण किए अश्रद्धा, अंधविश्वास, अधार्मिकता और अपवित्रता का असुर वहीं रोक दिया गया। इस वृक्ष ने भी एक बार द्वितीय विश्व युद्ध के समय अमेरिकी सैनिकों को बर्बर आक्रमण से रोक दिया। जिस समय अमेरिकी नौसैनिक

आगे बढ़े इन वृक्षों की पूरी की पूरी कालोनियाँ आगे सामना करने के लिए डटी पाई गईं।

कोई यह न समझ ले कि यह पौधे बौने होते होंगे। इनकी पूरी ऊँचाई सौ-सौ फुट तक होती है। पीले रंग के फूलों से आच्छादित इस वृक्ष के फल जब पकते हैं, तो उन फलों में अंकुर भी डाल में लगे-लगे ही फूट पड़ते हैं। जब तक यह अंकुर आठ-दस फुट के नहीं हो जाते, तब तक पौधे की डाल से उसी तरह लगे रहते हैं, जिस तरह परिव्राजक योग्य व्यक्तियों को आत्मोत्कर्ष के संदेश देकर तब तक पकाते रहते हैं, जब तक उनकी घनिष्ठता, श्रद्धा और निष्ठा में परिणत नहीं हो जाती। इस तरह अंकुरित फल एक धड़ाके के साथ टूटता है और १०-१२ इंच का नुकीली अंकुर तेजी से समुद्र की गहराई में धँसता चला जाता है। यदि उसने धरती पा ली तो वहीं से नये वृक्ष के रूप में पनपना प्रारंभ कर देता है। कदाचित ऐसा न हुआ तो वे फिर जल की ऊपरी सतह में आकर तैरना प्रारंभ कर देते हैं। तैरते-तैरते वे एक संगठन बनाकर काम करने की तरह कई ऐसे अंकुरित फल मिलकर कालोनी बना लेते हैं और जहाँ कहीं उचित स्थान मिला वहीं अपनी जड़ें जमाकर आत्म विकास प्रारंभ कर देते हैं।

■ बोतल वृक्ष—शिक्षक पेड़

'बोटल ट्री' (बोतल वृक्ष) आस्ट्रेलिया में पाए जाने वाला एक वृक्ष है। बोतलें पैदा होती हों, यह बात नहीं, पर जो बात है वह इससे भी अद्‌भुत है। बात यह है कि इसके तने की बनावट बोतल की-सी होती है और उसमें पानी की बहुत अधिक मात्रा भरी होती है। अपने इस गुण के कारण यह बहुत लंबे अर्से तक भी बिना पानी के बना रह सकता है। यही नहीं जल का अकाल पड़ जाए तो कोई भी मनुष्य उससे जल निकालकर बहुत दिनों तक अपना काम चला सकता है। एडीनम वृक्ष के तनों में भी पानी बहुतायत से पाया जाता है।

ऐसे ही केलीफोर्निया के ५०० मील लंबे और ३० मील चौड़े क्षेत्र, आस्ट्रेलिया व तस्मानिया आदि देशों में कुछ पौधों को आकाश नापने का शौक है। यूकेलिप्टस नेगनान्स नामक वृक्ष ३२५ फुट तथा सेक्युआ वृक्ष २६० फुट तक ऊँचे पाए जाते हैं। इसी प्रकार अफ्रीका में पाए जाने वाले वाओबाब नामक वृक्षों का तना इतना मोटा होता है कि उसके किनारे वट सावित्री के दिन कोई भारतीय महिला सूत के सात फेरे लपेटे तो उसके लिए उसे ६३० फीट लंबे सूत की आवश्यकता पड़ेगी। अनैतिक कमाई खा-खाकर अपना पेट बढ़ा लेने वाले मनुष्यों के समान वृक्ष भी किसी काम के नहीं होते, सिवाय इसके कि उन्हें जलाकर ईंधन का काम ले लिया जाए।

सभी तेल जड़ या फलों से प्राप्त किये जाते हैं, पर वैज्ञानिकों ने पता लगाया है कि तुलसी वृक्ष की पत्तियों में तैल ग्रंथियाँ पाई जाती हैं। उन्हीं का परिणाम है कि तुलसी का पौधा दूर तक अपनी सुगंध फैलाता और कृमियों को नष्ट करता है। अपनी इस उपकारप्रियता के कारण ही तुलसी एक वंदनीय पौधा है।

और विश्वास कीजिये कुछ ऐसे वृक्षों पर, जो लोगों को आवाज देकर बुलाते और आतिथ्य करते हैं। अमेरिका के उष्ण प्रदेश में जमैका में सीकेलिस नारियल जैसा एक वृक्ष होता है, उसके फल का वजन २० किलो होता है। जब ये पककर तैयार होते और फूटते हैं, तो उससे पटाखे की-सी धड़ाम की आवाज होती है। गोली की आवाज हो तो लोग डरें और भागें, किंतु इस धमाके की आवाज सुनते ही बंदरों के झुंड के झुंड उधर लपकते और जहाँ वह वृक्ष फूटा था, पहुँचकर उसकी गिरी खाने का आनंद लेते हैं।

आस्ट्रेलिया के उत्तर में इमली का एक इतना विशालकाय वृक्ष है कि उसके तने में पाए जाने वाले खोखले किसी समय जेल की आवश्यकता पूरी करते थे। लंबी कैद वाले अपराधियों को लाकर उसमें बंद कर दिया जाता था। कहा जाता है कि यह वृक्ष दो हजार वर्ष पुराना है। विशेषज्ञों का कथन है कि इस वृक्ष की

जड़ें बहुत गहरी हैं, उसी से वह अपनी सामर्थ्य इतनी अधिक बढ़ा सकने योग्य हुआ। जिस समाज में इस वृक्ष की तरह अपनी सांस्कृतिक और जातीय, संगठन की आस्थाएँ ऐसी गहरी होती हैं, उनकी सामर्थ्य भी इस वृक्ष जैसी ही होती है। हजारों वर्षों के प्रतिकूल आघात भी उनका कुछ बिगाड़ नहीं सकते।

ग्रीक में लाल लकड़ी (रेडवुड) नामक वृक्षों की ऊँचाई ३७० फीट तक पाई गई है। वृक्षों की ऊपर उठने की यह प्रवृत्ति मानो मनुष्यों को यह प्रेरणा देती हो कि मनुष्य पार्थिव समस्याओं में ही उलझा मत रह। ऊपर देख संसार कितना विराट् है ? उर्ध्वमुखी बनो और उसका ज्ञान भी प्राप्त करो।

इसी प्रकार अफ्रीका में पाए जाने वाले बालसा वृक्ष मनुष्य को इस संसार में हलका-फुलका जीवनयापन करने की प्रेरणा देते हैं। २० इंच व्यास वाले किसी ९५ फुट लंबे रेडवुड के टुकड़े को तोलें तो उसका वजन लगभग १४ टन बैठेगा, पर यदि इतनी ही लंबाई के बालसा वृक्ष के तने को लें, तो वह कुछ पंसेरियों में ही तौला जायेगा। कोई भी व्यक्ति उसे आसानी से कंधे पर उठाकर एक स्थान से दूसरे स्थान को ले जा सकता है।

अफ्रीका के जंगलों में एक ऐसा वृक्ष भी पाया जाता है, जिसका तना प्रतिदिन उतना दूध दे सकता है, जितना ५ गाएँ मिलकर। यह दूध अन्य दूध के समान ही पाचक, गुणकारी तथा स्वास्थ्यवर्धक होता है। वहाँ के लोग इस वृक्ष की उसी प्रकार पूजा करते हैं, जिस प्रकार भारतवर्ष में गोपाष्ठमी के दिन गऊ की पूजा की जाती है। मनुष्य कैसा भी हो, यदि उसे अपनी आंतरिक क्षमताओं का उपयोग करना शक्ति, प्रकाश और पोषण प्रदान करने में आ गया तो वह इस वृक्ष की तरह ही क्यों न हो ? संसार उसका आदर किए बिना रहेगा नहीं।

भयंकर तूफान आए, वर्षा हुई, आँधी चलीं और आस-पास के बहुत-से पेड़, जो अकेले का दंभ लिए खड़े थे, उजड़कर नष्ट हो गए। किंतु इंगलैंड के दो ऐलम-वृक्ष आघातों के बावजूद भी हरे-भरे

खड़े हैं। कोई भी तूफान उन्हें धराशायी न कर सका। उसका कारण यह है कि पति-पत्नी की तरह यह दोनों वृक्ष एक-दूसरे में जुड़कर एक हो गए हैं। कहते हैं इन वृक्षों को देखने बहुत-से लोग जाते हैं और वहाँ से एक प्रेरणा और जागृति लेकर लौटते हैं कि जिन मनुष्यों के दांपत्य जीवन आत्मीयता की ऐसी प्रगाढ़ स्थिति में होते हैं; उन्हें संसार की कैसी भी परिस्थितियाँ परास्त नहीं कर सकतीं।

कोई भी व्यक्ति चाहे वह आकृति में कितना ही छोटा हो, शक्ति में किसी से कम नहीं—इस बात का रहस्य जानना हो तो घास के किसी मैदान का आणविक विश्लेषण करना चाहिए। अपने आप उगने और कुछ दिन में ही सूख जाने वाली साधारण-सी घास—७०० बीघे मैदान से काट ली जाए और उसकी सारी आणविक ऊर्जा एकत्र कर ली जाए। उसकी शक्ति २० हजार टन टी० एन० टी० के बराबर अर्थात् पूरे एक हाइड्रोजन बम के बराबर होगी। इसी तरह छोटी-छोटी शक्ति वाले साधारण मनुष्यों में भी यदि कहीं से घास जैसा आत्म-विश्वास जाग्रत् हो जाए, तो वही संसार की ऐसी काया आत्म-विश्वास जाग्रत् हो जाए, तो वही सारे संसार की ऐसी कायापलट कर सकते हैं, जैसी कोई हाइड्रोजन बम।

फ्लोरिडा अमेरिका में एक अति प्राचीन वट वृक्ष अति सजीव प्रेरणाओं के साथ आज भी खड़ा है। इसके तने कई-कई सौ गज की दूरी में फैले हैं, फिर भी वे कहीं से इसलिए नहीं टूटते, क्योंकि उनमें से निकल-निकल कर जड़ें पृथ्वी में इस तरह मजबूत होती गई हैं, जैसे ८४ खंभों वाली, दालान की छत को खंभे साधते हैं।

कोई इन पेड़ों-वृक्षों से शिक्षा ले या न ले पर यह सच है—

शास्त्रकार उस अखिल ब्रह्मांडव्यापी दिव्य सत्ता की यह—विचित्र कलाकृतियाँ देखकर धन्य हो गया, उसकी वाणी इतना ही कह सकी—**"तत्त्व वंदे तद्भुतम्"** उस अद्भुत तत्त्व को मेरा बारंबार प्रणाम है।

उदाहरण स्वरूप सुमात्रा (इंडोनेशिया) के उस कुएँ को ले सकते हैं; जिसके अंदर झाँकने से दर्शक को एक के स्थान पर दो प्रतिबिंब दिखाई देते हैं। प्रकाश किरणों में ऐसी अद्‌भुत क्षमताएँ तो हैं कि वे किसी वस्तु का प्रतिबिंब कहीं भी, कैसा भी, चित्र-विचित्र बना दें, किंतु उसके लिए तरह-तरह के त्रिपार्श्व (प्रिज्म) और लेंसों का उपयोग आवश्यक होता है, इस कुएँ में कहीं कोई शीशा नहीं जड़ा। आश्चर्य तो यह है कि जो दो प्रतिविंब दिखाई पड़ते हैं, उनमें से एक तो दर्शक का ही होता, पर दूसरा किसी अपरिचित का। किस अपरिचित का ? वैज्ञानिकों के पास उसका कोई उत्तर नहीं है।

वेलाविस्त्रिया (दक्षिण अफ्रीका) में संसार का सबसे विचित्र पौधा पाया जाता है, उसकी ऊँचाई कुल १ फुट होती है; जबकि तने का व्यास ५½ फीट। शतायु जीवी इस पौधे का एक और बड़ा आश्चर्य है—उसकी तीन पत्तियाँ जो जन्म के साथ आती हैं और मृत्यु के साथ जाती हैं। प्रकृति में ऐसा गुण कहीं नहीं पाया जाता, जिससे वनस्पतिशास्त्री उसकी संगति मिलाते और इस पौधे के संबंध में कोई अनूठा सिद्धांत दे पाते।

धरती ब्रह्मांड की तुलना में बहुत छोटी है। रीडर्स डाइजेस्ट प्रकाशन ने एक एटलस प्रकाशित किया है; उसमें विराट् ब्रह्मांड का भी नक्शा प्रस्तुत किया गया है। उस तमाम नक्शे में समूचे सौरमंडल के लिए जिसकी लंबाई-चौड़ाई प्रकाश वर्षों में भी नापी जाती है, कोई स्थान नहीं दिया गया। एक तीर जैसा संकेत भर है और लिखा है—हमारा सौरमंडल यहाँ कहीं है (अवर सोलर सिस्टम इज समव्हेर हियर)। फिर इस पृथ्वी के अस्तित्व की नगण्यता का तो कहना ही क्या ? उसमें भी इटली जैसे छोटे-से देश की गिनती करना भी व्यर्थ है, पर उसी इटली के लुसेरा नामक स्थान में एक किला देखने जाएँ तो सारे ब्रह्मांड की विचित्रता को उसी किले में उतरा हुआ पाएँगे। इस किले की वैज्ञानिक इन दिनों तत्परतापूर्वक खोज कर रहे हैं; पर उसके अद्‌भुत रहस्य की कोई जानकारी

नहीं मिल रही है। सूर्योदय होने को होता है तो यह किला समूचा दिखाई देता है। उसी प्रकार सूर्यास्त होता है; उससे थोड़ी देर पहले भी किला समूचा दिखाई देता है; शेष समय किला एक मात्र खंडहर के रूप में दिखाई देता है। किन किरणों का खेल है, यह जो अपनी इच्छानुसार उसे किले के रूप में प्रस्तुत कर देती हैं अथवा खंडहर के रूप में, कुछ भी तो पता नहीं चल पाया। वैज्ञानिकों का कथन है कि सूर्य के साथ उदय या अस्त होने वाली किरणें इस पृथ्वी पर पहुँचने से पहले तारों से भरे आकाश में १० हजार वर्ष तक घुस लेती हैं, तब पहुँचती हैं। संभव है इस घटना का संबंध इस ताप से हो, पर उसके लिए व्यक्ति को विराट् आँखें चाहिए चमड़े वाली नहीं।

प्रकाश तत्त्व और शब्द तत्त्व दोनों ही शक्ति के रूप में हैं। प्रकाश ही नहीं इटली के ही लुसेरा नामक स्थान में ब्रह्म अपनी शब्द की गोपनीयता का भी आभास कराता है। यहाँ एक ऐसा मकान है, जिसमें कोई चिल्लाए या बात करे तो उसकी आवाज ११ बार प्रतिध्वनित होती है, पर सूर्यास्त हो जाने के बाद आप कोई बात कहेंगे तो प्रतिध्वनि ११ की अपेक्षा १२ बार आयेगी, किसी नियम के द्वारा वैज्ञानिक कहते हैं, भाई—कुछ अता-पता नहीं, कारण क्या है ?

बिहार राज्य के चंपारन जिले में एक प्रकार का धान पाया जाता है, जिसका उल्लेख करते हुए डॉ० डाग स्टोरर ने अपनी सुप्रसिद्ध पुस्तक "वंडर बुक ऑफ स्ट्रेंज फेक्ट्स" में लिखा है कि यह धान अपना सिर हमेशा पानी की सतह से ऊपर रखता है। यदि कदाचित खेत में बहुत अधिक बाढ़ आ जाए तो धान के पौधे असामान्य गति से बढ़कर दूसरे ही दिन जल की सतह से ऊपर अपना सिर उठा लेते हैं, जबकि जड़ें जमीन में ही लगी रहती हैं। गति की इस असामान्यता का पता इसी बात से लगाया जा सकता है कि यह पौधे एक या दो दिन में ही २० फीट तक बढ़ सकते हैं,

जबकि सामान्य पौधों को उतनी ऊँचाई तक बढ़ने के लिए कई महीनों का समय चाहिए।

यह प्रमाण दर्शाता है कि वृक्ष भी उसी दिव्य चेतना के प्रकाश पुंज हैं, जैसे मनुष्य और मनुष्येत्तर प्राणी। जो शक्तियाँ मनुष्य तथा प्राणियों में दिव्य विलक्षणताएँ उत्पन्न कर देती हैं, वही शक्तियाँ वृक्ष वनस्पतियों को भी प्रभावित करती हैं। पहले कभी तो विज्ञान ही यह मानता रहा था कि पेड़-पौधे भी धूल-पत्थर की तरह निष्प्राण हैं। कुछ वर्षों से ही यह माना जाने लगा है कि वृक्ष-वनस्पतियों में भी प्राणचेतना विद्यमान है।

एक छोटी-सी घटना से प्रेरित होकर हमारे ही देश के एक वैज्ञानिक जगदीशचंद्र बसु ने यह सिद्ध किया कि पेड़-पौधों में भी जान है। वे भी अनुभव करते हैं। उनमें भी अनुभूति और भावनाएँ मौजूद रहती हैं। वे भी मनुष्यों और जानवरों की तरह सुख में सुख तथा दुःख में दुःख अनुभव करते हैं। बसु ने 'आप्टिकल लीवर' नामक एक विशेष यंत्र बनाया था, जिसके माध्यम से पेड़-पौधों की गति, स्पंदन और संवेदनाओं का अध्ययन किया जाता था। पेड़ की पत्ती तोड़ने पर उसे जो पीड़ा होती है, आप्टिकल लीवर ने उसे पकड़ा और बताया। इसी तरह की कई और बातें, प्रक्रियाएँ 'आप्टिकल लीवर' से देखी जा सकीं।

परंतु सर जगदीश चंद्र बसु के बाद से अब तक विज्ञान ने काफी तरक्की कर ली है और उसी तरह वनस्पति विज्ञान के क्षेत्र में हुई नयी-नयी शोधों में वनस्पति संसार के नए रहस्य खोलकर रख दिए हैं। जैसा कि उपरोक्त घटना में ही देखा गया। पेड़-पौधे मनुष्य के संकेतों को समझते हैं और उन्हें प्रेरित किया जाये तो सम्मोहित व्यक्ति की तरह उन पर आचरण भी करते हैं। पियरे पाल साविन ने यही तो किया था। उन्होंने घोषित प्रदर्शन के पूर्व बिजली के एक स्विच का संबंध अपनी देह के साथ जोड़ा और दूसरे स्विच को गैल्वेनोमीटर से लगाया। इस गैल्वेनोमीटर का संबंध एक पौधे के साथ जोड़ा गया था। साविन वहाँ बैठे-बैठे

संकेत देते और पौधा विद्युत् ट्रेन के परिपथ के साथ उलटा संबंध स्थापित करता, जिससे ट्रेन पीछे की ओर चलने लगती। इस प्रयोग को अमेरिका में टेलिविजन पर भी बताया गया। लोग दंग रह गए यह देखकर कि पौधा भी इतना आज्ञाकारी हो सकता है।

भारतीय धर्मशास्त्रों में पेड़-पौधों और वनस्पतियों से मनुष्य द्वारा स्थापित किए गए सजीव संपर्क की ढेरों घटनाओं का उल्लेख मिलता है। आयुर्वेद शास्त्र के पितामह चरक के संबंध में विख्यात है कि उन्होंने अपने छोटे-से जीवन में हजारों जड़ी-बूटियों के गुण मालूम किये तथा कौन-सी जड़ी किस रोग में कैसे प्रयोग की जानी चाहिए ? इसका विस्तृत विधि-विधान खोजा। आजकल वैज्ञानिक एक रोग की दवा खोजने अथवा एक औषधि का परीक्षण विश्लेषण करने में ही जीवन भर गुजार देते हैं, तो एक व्यक्ति द्वारा अपने छोटे-से जीवन में हजारों औषधियों का अध्ययन विवेचन कैसे संभव है ? विश्वास नहीं किया जाता।

ऐसा उल्लेख मिलता है कि आयुर्वेद की रचना करते समय चरक जंगल में एक-एक झाड़ी, पौधे और वनस्पति के पास जाते तथा उससे उसकी विशेषताएँ पूछते। वनस्पति स्वयं अपनी विशेषताएँ बता देती। इसी आधार पर हजार वर्षों या हजार वैज्ञानिकों का कार्य एक अकेले व्यक्ति द्वारा संपन्न किया जा सका। पहली बात को जहाँ संदिग्ध समझा जाता रहा है, वही दूसरी को हास्यास्पद कहा जाता है। परंतु अब, जबकि वनस्पति जगत् में हुई अधुनातम खोजों के आधार पर वैज्ञानिक यह कहने लगे हैं कि पेड़-पौधों से न केवल संवाद संभव है, वरन् उनसे इच्छित कार्य भी कराया जा सकता है। पियरे पाल साविन का तो यहाँ तक कहना है कि चोरों से घर की सुरक्षा के लिए भी भविष्य में पेड़-पौधों का इस्तेमाल किया जा सकेगा। उसके लिए किसी भी पौधे का संबंध दरवाजे के साथ जोड़ दिया जायेगा और मकान मालिक जब उस पौधे के पास जाकर खड़ा

हो जायेगा तो पौधा अपने मालिक को पहचानकर दरवाजा खुलने देगा।

यहाँ तक तो फिर भी उतना आश्चर्य नहीं होना चाहिए। अमेरिका के ही एक और इलेक्ट्रॉनिकी विशेषज्ञ वैकस्टर ने तो यहाँ तक कहा है कि पेड़-पौधे अपने मालिकों की मृत्यु पर शोक भी व्यक्त करते हैं। पियरे पाल साविन ने तो यहाँ तक कहा है कि पेड़-पौधे न केवल मनुष्यों की मृत्यु पर शोक व्यक्त करते हैं, बल्कि उन्हें मानव कोशाओं की मृत्यु का बोध होता है, तो वे उस पर भी अपनी संवेदना व्यक्त करते हैं।

इसके लिए साविन ने अस्सी मील दूर पर एक प्रयोग किया। साविन ने जिस पौधे को प्रयोग के लिए चुना था, वह अस्सी मील दूर पर एक अनुसंधान केंद्र में स्थित था। फिर उसने अपने शरीर को बिजली के झटके दिए। अस्सी मील की दूरी पर स्थित पौधे पर इसकी प्रतिक्रिया नोट की गई, जबकि दोनों के बीच कोई संबंध नहीं था; सिवा इसके कि जब साविन के शरीर को बिजली के झटके दिये जा रहे थे, तो वह कल्पना में उन पौधों का ध्यान कर रहा था।

फिर भी साविन को यह विश्वास नहीं हुआ कि पौधे उसके शरीर पर लगने वाले विद्युत् झटकों पर ही प्रतिक्रिया व्यक्त करते थे। साविन ने विचार किया कि संभव है—पौधे अपने आस-पास की दूसरी किसी घटना पर अपनी प्रतिक्रिया व्यक्त कर रहे हों। अतः अब एक पौधे के स्थान पर तीन-तीन पौधे लिए गए और तीनों पौधों को अलग-अलग कमरों में रखा गया। हर कमरे का माहौल दूसरे के माहौल से बिल्कुल भिन्न था तथा तीनों पौधे एक ही विद्युत् पथ से जुड़े हुए थे। उधर अस्सी मील दूरी पर स्थित साविन ने अपना प्रयोग आरंभ किया। न कोई संपर्क न संबंध सूत्र। केवल विचार शक्ति का उपयोग करना था। साविन ने जब अपना प्रयोग आरंभ किया तो तीनों ही पौधों पर एक समान प्रतिक्रियाएँ हुईं। अब इसमें कोई संदेह नहीं था कि पौधे अस्सी मील दूर बैठे साविन की

अनुभूतियों, संवेदनाओं को ग्रहण कर, अपनी प्रतिक्रियाएँ व्यक्त कर रहे थे।

पेड़-पौधे न केवल मनुष्य के आज्ञा पालन को तत्पर और दुःख-सुख में संवेदनाएँ व्यक्त करते हैं, वरन् उनमें भी भावनाओं का आवेश उमड़ता है। जापान के मनोविज्ञानी डॉ० केन हाशीमोतो ने 'लाइडिटेक्टर' के माध्यम से इस बात का पता लगाया। 'लाइडिटेक्टर' एक ऐसा यंत्र है, जो अपराधियों की झूठ पकड़ने के काम आता है। इसका सिद्धांत है कि व्यक्ति जब कोई बात छुपाता है या झूठ बोलता है तो उसके शरीर में कुछ वैद्युतिक परिवर्तन आ जाते हैं। लाइडिटेक्टर उन परिवर्तनों को अंकित कर लेता है और बता देता है कि व्यक्ति झूठ बोल रहा है अर्थात् मनुष्य की भावनात्मक स्थिति में आने वाले परिवर्तनों को लाइडिटेक्टर बता देता है।

डॉ० केन हाशीमोतो ने इस मशीन का संबंध कैक्टस के एक पौधे से जोड़ा, इसके बाद यंत्र को चालू कर दिया; यंत्र ने बड़ी तेजी से कंपन अंकित किए। हाशीमोतो ने इन कंपनों को ध्वनि-तरंगों में बदलने के लिए कुछ विशेष इलेक्ट्रॉनिक यंत्रों का सहारा लिया। इन यंत्रों की मदद से कंपनों को ध्वनि-तरंगों में परिवर्तित किया और उन्हें सुना गया, तो लयात्मक स्वर सुने गए। जो स्वर सुने गए, उनमें कहीं हर्ष का आवेग था तो कहीं भय की भावना।

हाशीमोतो ने केक्टस के पौधे पर इतने प्रयोग किए कि उसे गिनती गिनना तक सिखा दिया। कैक्टस का पौधा हाशीमोतो की आज्ञा पाकर एक से बीस तक गिनती गिनने लगता और यह पूछने पर कि दो और दो कितने होते हैं, स्पष्ट उत्तर देता चार। इस प्रयोग को अन्य कई वैज्ञानिकों ने भी देखा और संसार की विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित कराया।

प्रदर्शन के समय पेड़ के सामने प्रश्न रखा गया कि बारह में से चार घटाने पर कितने बचते हैं। केक्टस ने जो उत्तर दिया,

डॉ० हाशीमोतो ने उसे ध्वनि-तरंगों के रूप में परिवर्तित करके दिखाया। ध्वनि-तरंगों को जब हैडफोन पर सुना गया तो स्पष्ट उत्तर सुनाई दे रहा था—आठ। इन प्रयोगों और निष्कर्षों को लेकर जापान ही नहीं संसार के वनस्पति विज्ञान में एक नयी हलचल पैदा हो गयी है।

अब इसमें कोई संदेह नहीं रह जाता कि चरक ने कभी जड़ी-बूटियों से प्रश्न किया हो और जड़ी-बूटियों ने बताया हो कि हम अमुक रोग का उपचार करने में समर्थ हैं। प्रश्न उठता है कि प्राचीनकाल में जब भारतीय विज्ञान इतना विकसित रहा था तो वह लुप्त क्यों हो गया ? इस संदर्भ में एक बात स्मरणीय है कि आधुनिक विज्ञान यंत्रों के द्वारा शोध और प्रयोग करता है; परंतु प्राचीनकाल में यही आत्मा की शक्ति-सामर्थ्य के बल पर किया जाता था। चेतना तक चेतना की पहुँच सुगम है; अपेक्षाकृत चेतन को यंत्रों से संबोधित करने के। वहाँ भी चेतना ही काम करती है, परंतु यांत्रिक व्यवस्था जब बीच का माध्यम बनती है तो चेतना की गति निर्विरोध नहीं रह जाती। प्राचीनकाल में चेतन को चेतन से प्रभावित करने और आत्मिक चेतना से अदृश्य गुह्य रहस्य उद्घाटित करने के जो प्रयोग हुए तथा उनमें जो सफलताएँ मिली, उन्हें परंपरागत रूप से दूसरे को प्रत्यावर्तित नहीं किया जा सका।

डॉ० हाशीमोतो ने जब जापान के विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में इस तरह के लेख लिखे तो उनके पास ढेरों पत्र पहुँचने लगे। लोगों ने कैक्टस की इन भौतिक क्रियाओं के पीछे विद्यमान रहने वाले भौतिक कारणों को जानना चाहा, तो डॉ० हाशीमोतो ने एक-दूसरे लेख में लिखा—संसार में ऐसी कितनी ही घटनाएँ घटती हैं, जिनके पीछे विद्यमान कारणों पर भौतिक विज्ञान प्रकाश नहीं डाल सकता, क्योंकि वह अभी पूर्ण विकसित नहीं हुआ है। इस गुत्थी को सुलझाने में पूर्व का अध्यात्म विज्ञान ही समर्थ है, जो चेतना की सर्वव्यापकता और उसके जीवंत

अस्तित्व को स्वीकारता है। यह कोई विलक्षण घटना नहीं है। विलक्षण इसलिए लगती है कि हमारी जानकारी में अभी आयी है। अन्यथा गैलीलियो के बताने से पूर्व भी पृथ्वी सूर्य की परिक्रमा करती थी और बताने के बाद भी। केवल गैलीलियो का यह सिद्ध करना विस्मयकारी और अविश्वसनीय रहा कि पृथ्वी सूर्य की परिक्रमा करती है।

अगले दिनों भारतीय तत्त्वदर्शन की अन्यान्य मान्यताएँ भी इसी प्रकार खरी सिद्ध हो सकती हैं कि सृष्टि-ब्रह्मांड में जड़ कुछ नहीं है। अद्वैत दर्शन सर्वत्र एक चेतना के अस्तित्व का ही तो प्रतिपादन करता है।

❐ ❐

जीवन पृथ्वी तक ही सीमित नहीं

*

घटना २३ नवंबर, १९५३ की है। मिशिगन (अमेरिका) के कैनरास एअर बेस (हवाई अड्डे) पर रैडार यंत्र सक्रिय था। वह प्रशिक्षण चालकों की उड़ान का अवलोकन और नियंत्रण कर रहा था। रैडार एक ऐसा यंत्र है, जिससे दूर उड़ रहे विमानों की दिशा, दूरी, स्थिति आदि का अध्ययन किया जाता है। अभी उड़ान प्रारंभ ही हुई थी कि रैडार पर बैठा आपरेटर एकाएक चौंक पड़ा, स्क्रीन (दृश्य पटल) पर एक ऐसी वस्तु उभर आई थी, जिसे आज तक कभी भी आकाश में न तो देखा गया था, न कल्पना की गई थी, अत्यधिक तेज चमक वाली यह गोलाकार वस्तु हवाई जहाज की गति से भी अधिक तीव्र गति से हवाई अड्डे की ओर उन्मुख उड़ती चली आ रही थी। एक क्षण तो आपरेटर हक्का-बक्का हो गए। दूसरे क्षण उच्च अधिकारियों को सूचना दी गई, जो बात नई हो उसके बारे में अधिकारी ही क्यों न हों अनभिज्ञ ही होता है, सो वह भी कुछ समझ न पाए कि वह वस्तु है क्या ? उसका लक्ष्य क्या है तथा प्रस्तुत परिस्थिति से कैसे निबटा जाए ?

ऐसी अजनबी परिस्थितियों में फौजी निर्णयों से काम नहीं चलता, उसके लिये विचार-मंथन के बाद किसी निष्कर्ष पर पहुँचना आवश्यक होता है, पर यहाँ अवसर होता तब न ? उस समय फ्लाइट लेफ्टिनेंट आर० बिल्सन अपने एफ-८६ जेट हवाई जहाज के साथ प्रशिक्षण उड़ान पर थे। उन्हें बेतार के तार (वायरलेस) से इस अजनबी वस्तु का पीछा करने और वह है क्या ? इसकी खोज- खबर लेने का निर्देश दिया गया। अब तक वस्तु (ऑब्जेक्ट) पश्चिमोत्तर दिशा में मुड़ चुका था। आर० बिल्सन ने उसका तेजगति से पीछा किया और १६० मील तक पीछे लगे रहे। इस बीच उन्होंने जो संदेश दिए, वह इस प्रकार हैं—(१)-यह कोई गोलाकार यान लगता है, पर वह किस धातु से बना हो सकता है ?

कुछ समझ में नहीं आता। (२) उसके भीतर कोई दिखाई नहीं दे रहा, पर उसकी गति, मुड़ना, दिशा नियंत्रण इस बात के प्रतीक हैं कि अंदर या बाहर कोई अत्यंत कुशल बुद्धि उसका नियंत्रण कर रही है।

अभी यह शब्द पूरी तरह समाप्त भी नहीं हो पाए थे कि ऐसा लगा, वह वस्तु और आर० बिल्सन का जेट दोनों परस्पर मिल गये और एक-दूसरे में आत्मसात् हो गए। कंट्रोलर बहुतेरा हलो बिल्सन ! हलो बिल्सन !! चिल्लाते रहे; पर कोई प्रत्युत्तर नहीं आया। वह वस्तु और भी तेज गति से अंतरिक्ष पार क्षितिज के पेट में जा समाई।

हवाई अड्डे का खोजी दल वाहनों में भागा, फायर ब्रिगेड सक्रिय हुई, दूसरे जहाज उड़ाए गए। जिस स्थान पर इस घटना का रैडार ने संकेत दिया था, वहाँ से बीसियों वर्ग किलोमीटर क्षेत्र का चप्पा-चप्पा छान मारा गया; किंतु बिल्सन तो दूर जहाज का रत्ती भर टुकड़ा तक कहीं नहीं मिला। इस खोज का क्रम कई दिनों तक चला। अंत में विशेषज्ञ समिति ने "आर० बिल्सन कहाँ गए ? यह एक रहस्य भरी पहेली बन गया है।" कहकर अपनी असमर्थता और हार स्वीकार कर ली।

इस दुर्घटना के बाद से कई ऐसे रहस्य उभरते हैं, जिनका आज तक कोई समाधान नहीं निकल सका। क्या यह अंतरिक्ष के विकिरण का कोई "बगूला" या "भँवर" था ? जिसने बिल्सन को आकाश के गहरे विकिरण सागर में डुबो दिया या फिर किसी अन्य ग्रह से आया कोई यान था, जो पृथ्वीवासियों के रहस्यों का पता लगाने के लिए योजनाबद्ध ढंग से भेजा गया हो ? दोनों ही तरह से पाठक सोच सकते हैं और जी में आए वह निष्कर्ष निकाल सकते हैं, क्योंकि तथ्य किसी को ज्ञात नहीं। यदि कोई एक बात तथ्य रूप में सामने आती है, तो वह मात्र यह कि इस ब्रह्मांड में जितने सितारे चमक रहे हैं; रहस्य उससे भी अनेक गुने अधिक हैं। क्या मनुष्य उनमें से कुछ जान सकता है ? इतनी दूर की क्यों ?

मनुष्य शरीर ही विलक्षण शक्ति केंद्रों की, सामर्थ्यों की चलती-फिरती रहस्यमय मशीन है। यदि वह इसी को भली प्रकार जान ले सो ही बहुत है।

तब से देश-विदेश में ऐसी अनेक घटनाएँ घट रही हैं—रहस्य नित्य प्रति गहरा रहा है; पर समझ में कुछ नहीं आ रहा है। ३ मई, १९६४ को आस्ट्रेलिया की राजधानी कैनबरा में कुछ लोगों ने ऐसी ही किसी रहस्यमय वस्तु की सूचना दी। सूचना देने वालों में ३ ऋतु विशेषज्ञ भी थे, जो उस समय अपने रैडार यंत्रों पर मौसम का अध्ययन कर रहे थे। उन्होंने बताया यह अत्यंत चमकदार और तश्तरी की-सी बनावट की वस्तु में से कंगारू के पेट से बाहर आए बच्चे की तरह एक वैसी ही लघु आकृति भी बाहर आई। उसके रंग में और पूर्ववर्ती के रंग में कुछ अंतर था। थोड़ी देर में छोटा बड़े की ओर लपका और दोनों एक हो गए और न जाने कहाँ अंतरिक्ष में विलीन हो गए।

नासा अधिकारी अभी इस बात की छानबीन में ही थे कि २९ जनवरी, १९६५ में स्वयं अमेरिका में ही इस तरह की एक और घटना घटी; जबकि मेरीलैंड समुद्री हवाई अड्डे के दो आपरेटरों ने वैसी ही सूचना दी। यह वस्तु हवाई अड्डे के ३० मील पास तक चली आई। खतरे की घंटियाँ तो बजाई गईं, पर पहले का सबक साथ था। अतएव इस बार उसका पीछा करने का साहस किसी ने नहीं किया।

६ नवंबर, १९६७ जर्मनी में "टेलिविजन नं. २ पर आकाशयुद्ध पर ट्रांसमिशन चल रहा था। लुप्तहंसा एअर क्रैफ्ट के एक कैप्टन ने अपने चार साथियों के साथ बताया कि १५ फरवरी, १९६७ को उनका जहाज सेनफ्रांसिस्को हवाई अड्डे की ओर बढ़ रहा था; उस समय एक तेज चमकदार मशीन ने १५ मिनट तक हमारा पीछा किया। वह ३३ फुट व्यास की वस्तु थी, इस घटना से एक ओर घबराहट हुई दूसरी ओर आश्चर्य भी कि यह है क्या ?

५५ मिनट के पश्चात् उसने स्वतः पीछा छोड़ दिया और वह दूसरी ओर मुड़कर भाग गई।

बी० टी० ए० न्यूज एजेंसी की २३ नवंबर, १९६७ की एक खबर में बताया गया है कि उससे ३ दिन पूर्व बलगारिया की राजधानी सोफिया में ऐसी वस्तु देखी गई, जिसे अब तक कभी पहचाना नहीं गया। (इसे अपने इसी गुण के कारण वैज्ञानिक नाम यू० एफ० ओ० अनआईडेंटीफाइड ऑब्जेक्ट) दिया गया है। सामान्य लोग उड़न तश्तरी कहते हैं। उससे शक्तिशाली किरणें निकलने की भी सूचना थी, जिसे वहाँ के हाइड्रोलाजी (जल शक्ति विज्ञान) तथा मेट्रोलाजी (मौसम विज्ञान) के अधिकारियों ने भी देखा और बताया कि उड़ती वस्तु अपनी शक्ति से चालित थी तथा पृथ्वी से ९८ मील ऊपर उड़ रही थी।

अमेरिका, फिलीपीन, रूस, जर्मनी, मैक्सिको आदि अनेकों देशों में यह उड़न तश्तरियाँ देखी गई हैं; यदि यह मान लिया जाए कि ६८ प्रतिशत व्यक्तियों को यह भ्रम बाल लाइटनिंग, मौसम विभाग द्वारा छोड़े गए गुब्बारे देखकर, अजब तरह के बादल और उन पर पड़ी किरणें देखकर, धुँधलके में प्रकाश व छाया से बने दृश्य या किसी नये तरह के हवाई जहाज को देखकर हुआ होगा तो भी २ प्रतिशत लोग तो ऐसे हैं ही, जिनके कथन असत्य नहीं कहे जा सकते; उनकी जानकारियाँ प्रामाणिक होनी चाहिए। इन लोगों में एअर क्रैफ्ट (हवाई जहाज के लोग) एवं मौसम विज्ञान के लोग आते हैं। दूसरा भूल कर सकता है; पर अनुभवी पाइलट जो उड़ान के समय शराब नहीं पीते, व्यर्थ बात नहीं करते। ऐसा करें तो उन्हें सर्विस से हाथ धोना पड़े—झूठ क्यों बोलेंगे ? तब फिर इन रहस्यों का कोई समाधान हो सकता है क्या ? उसके लिए तब तक प्रतीक्षा करने के अतिरिक्त और कोई चारा नहीं, जब तक सारे ब्रह्मांड के स्वरूप और स्थिति की जानकारी नहीं मिल जाती।

■ जीवन तत्त्वों का अध्ययन

पोलिश खगोलवेत्ता जान गाडोमिस्की ने अपने अनुसंधानों का विस्तृत विवरण मेनुअल आनस्टेलर एकोस्फियर्स 'नामक ग्रंथ में प्रकाशित कराया है। उन्होंने अनेक प्रमाण प्रस्तुत करते हुए यह सिद्ध किया है कि १० या ११ प्रकाश वर्ष दूरी पर स्थित कम से कम तीन ग्रह ऐसे अवश्य हैं, जिनमें विकसित स्तर का जीवन विद्यमान है।

अमेरिकी ज्योलाजीकल सर्वे के माक्रोबायोलोजिस्ट डॉ० सिसलर ने पृथ्वी पर गिरी एक उल्का का अध्ययन करके यह बताया कि इसमें अमीनों, नाइट्राइट एवं हाइड्रोकॉर्बन जैसे पदार्थों के मूलकण उनमें मौजूद हैं। इसी उल्का खंड पर कैलीफोर्निया विश्वविद्यालय के डॉ० कान्विन ने नए सिरे से शोध की। उन्होंने और अधिक जोरदार शब्दों में कहा कि जिस ग्रह से यह उल्का खंड आया है, वहाँ जीवन का अस्तित्व होना ही चाहिए।

अब प्रयत्न यह किया जा रहा है कि पचास मील ऊँचा उड़ सकने वाला एक राकेट बनाया जाए, जो अंतरिक्ष में उड़ती हुई उल्काओं को पकड़कर धरती पर जीती-जागती स्थिति में ला सके, ताकि उन उल्काओं के साथ जुड़े हुए जीवन तत्त्वों का अध्ययन करके यह जाना जा सके कि उस सौरमंडल में कौन उससे बाहर जीवन किस स्तर का और कहाँ है ? होता यह है कि जब कोई उल्का पृथ्वी के वायुमंडल में प्रवेश करती है, तो तीव्र घर्षण की आग में जलकर भस्म हो जाती है। जो पूरी तरह जलती नहीं, उसकी भी बाहरी परत बेतरह झुलस जाती है और मध्य भाग में असाधारण रूप में परिवर्तित हो जाती है। ऐसी दशा में इस योग्य नहीं रहती कि अपने उद्‌गम संबंधी उपयुक्त जानकारियाँ दे सकें। उपरोक्त जीवित उल्काश्म का ऊपर उल्लेख किया गया है। वैसे खंड तो यदा-कदा ही मिलते हैं। इस कठिनाई को हल करने के लिए ही ऐसे जेट राकेट के निर्माण की तैयारियाँ हो रही हैं, जो

अंतरिक्ष सागर में तैरती हुई उल्का मछलियों को जीवित पकड़कर धरती पर लाने में सफल हो सकें।

पोले आकाश में विविध रसायनों के धूल कण ही नहीं, प्रचुर परिमाण में जीवाणु भी उड़ते रहते हैं। उनमें से कुछ तो धरातल से वायु द्वारा ऊपर उड़ाए जाते हैं और कुछ अंतरिक्ष से विविध ग्रह-नक्षत्रों से उतरते-बरसते रहते हैं। इन जीवाणुओं की जीवनचर्या विचित्र है। अंतरिक्ष में विद्यमान उड़नशील अदृश्य पदार्थों को ही वे अपनी चुंबकीय शक्ति से उपलब्ध करके आहार का प्रयोजन पूरा करते रहते हैं और बिना युग्म संयोग के एकाकी नर-नारी की उभय पक्षी आवश्यकता पूरी करते हुए द्रुतगति से वंश वृद्धि करते रहते हैं।

शिकागो विश्वविद्यालय के एनरिको इन्स्टीट्यूट ऑफ न्यूक्लियर स्टडीज के शोध प्राध्यापक जान० एच० वार्कर ने अपना निष्कर्ष व्यक्त करते हुए कहा है कि अन्य ग्रह-नक्षत्रों द्वारा हमारी पृथ्वी पर लगभग एक टन अंतरिक्ष धूलि बरसाई जाती है, जिसमें बहुमूल्य खनिज, रसायन ही नहीं, ऐसे जीवाणु भी होते हैं, जिन्हें धरती पर उत्पन्न हुए नहीं कहा जा सकता। वार्कर महोदय का कथन यह भी है कि स्वभावतः अपनी धरती भी अन्य ग्रह पिंडों तक अपनी धूलि बखेरती होगी और इस धुलेड़ी में धूलि बखेरने के पारस्परिक हुड़दंग में वह पीछे नहीं रहती होगी।

ग्रहपिंडों की दुनिया का यह धूलिमार प्रमोद ही महत्त्वपूर्ण निष्कर्ष निकालता है। पहला यह कि ग्रह-नक्षत्रों के बीच जड़ और चेतन स्तर का आदान-प्रदान अनंत काल से चला आ रहा है। इस प्रकार वे एक-दूसरे की भली-बुरी उपलब्धियों को परस्पर मिल-बाँट कर उपयोग करने की रीति-नीति का अनुसरण करं रहे हैं। दूसरा निष्कर्ष यह है कि जीवन अकेली पृथ्वी की ही बपौती नहीं है। जिस प्रकार के जीवधारी धरती पर रहते हैं, वैसी आकृति-प्रकृति के न सही, किसी न किसी आकार-प्रकार के प्राणी इस विशाल ब्रह्मांड में अन्यत्र भी रहते हैं। यदि ऐसा न होता तो अंतरिक्ष धूलि के साथ

बरसने वाले ऐसे जीवाणुओं का अस्तित्व कहाँ से होता ? जो धरती के जीवन से भिन्न प्रकार के हैं।

जीवशास्त्रियों का एक कथन यह भी है कि अंतरिक्ष में उड़ते पाए जाने वाले जीवाणु भ्रमणशील आदिवासी हैं, जो कहीं एक जगह नहीं टिकते। एक ग्रह पर ठहरने में इन्हें चैन नहीं पड़ता। यहाँ से वहाँ इनका अहैतुकी पर्यटन चालू रहता है और ग्रहों की दुनिया में चलते रहने वाले आकर्षण-विकर्षण की तरंगों पर सवार होकर वे करोड़ों मील की द्रुतगामी यात्राएँ मुफ्त में और सहज में पूरी किया करते हैं।

इसी संदर्भ में यह भी बताया गया कि ३५ करोड़ वर्ष पूर्व जब धरती बनी थी, तो जीवन का उद्‌भव उसने अपने भीतर से नहीं किया, वरन् यहाँ की अनुकूल परिस्थितियों में अंतरिक्षीय जीवाणु आकर बस गये और उनके विविध वंशजों ने क्रमशः इस समस्त लोक पर कब्जा कर लिया।

ऑक्सीजन, नाइट्रोजन, प्रोटीन प्रभृति रसायनों के सहारे ये जीवाणु तेजी से विकसित होते हैं और परिस्थितियों के अनुरूप आकृति-प्रकृति के शरीर उत्पन्न करते हैं; परंतु यह आवश्यक नहीं कि जीवन अमुक रसायनों की अथवा तापमानों की स्थिति तक ही सीमित हो। वह धरती से भिन्न प्रकार की परिस्थितियों में भी स्थिर रह सकता है और विकसित हो सकता है। अपने सौरमंडल के बृहस्पति, शनि, यूरेनस, नेपच्यून ग्रहों के धरातल का तापमान शून्य से भी १४० से लेकर २०० डिग्री सेंटीग्रेड तक नीचे चला जाता है। उनमें मैथेन एवं अमोनिया गैस का आधिक्य है। मोटेतौर पर इन परिस्थितियों में जीवन के अस्तित्व की कल्पना हम जीवधारी नहीं कर सकते, पर वैज्ञानिक इस निष्कर्ष पर पहुँचे हैं कि अन्य ग्रहों के जीवाणु ऐसे भी हो सकते हैं, जो भिन्न-भिन्न प्रकार की परिस्थितियों में जीवित रह सकने के अभ्यस्त हो गए हों। इतनी बड़ी मात्रा में उपरोक्त ग्रहों में मैथेन और अमोनिया गैसें क्यों कर उत्पन्न हो गईं ? इसका उत्तर देते हुए वैज्ञानिक एक ही बात कहते हैं कि

इन गैसों का उद्‌भव जीवधारियों की हलचलों के बिना नहीं हो सकता। अस्तु वहाँ जीवन भले ही किसी भी स्तर का क्यों न हो, होगा अवश्य।

प्लेटो ग्रह में हाइड्रोजन, हिलियम और निओन गैस की प्रधानता है तथा तापमान शून्य से नीचे ४०० डिग्री फारेन हाइट है। शुक्र ग्रह का धरातल कार्बनडाइऑक्साइड से भरा है और तापमान १०० डिग्री सेंटी ग्रेड से ऊपर है। अमेरिकी खगोलवेत्ता ह्वियल और मेंजेल की खोज के अनुसार इस स्थिति में भी वहाँ जीवन के लक्षण विद्यमान हैं।

चंद्रयात्री और व्यक्ति जो सूचनाएँ लेकर आए हैं, उनसे पता चला है कि दिन में वहाँ का तापमान १३४ डिग्री सेंटीग्रेड और रात को १५३ डिग्री सेंटीग्रेड रहता है। पृथ्वी पर २७३ डिग्री सेंटीग्रेड नीचे तापमान तक में जीवाणु जीवित रह सकते हैं। ऐसी दशा में कोई कारण नहीं कि चंद्रमा अथवा वैसे ही ग्रहों पर जीवाणुओं का अस्तित्व संभव न हो।

अधिक शीत या अधिक गर्मी में भी जीवित तत्त्व का अस्तित्व हो सकता है। प्राणधारी किसी भी जटिल परिस्थिति में निर्वाह कर सकने में समर्थ हैं—यह तथ्य अब वैज्ञानिक खोज के लिए नया आधार मिला है और यह समझा जा रहा है कि प्रकृति के हर अवरोध को सहन कर सकने में जीवन सत्ता समर्थ है, तो कोई कारण नहीं कि अति शीतल और अति उष्ण समझे जाने वाले ग्रह तारकों में जीवधारियों का निवास न हो।

■ जीवन एक समर्थ अस्तित्व

जीवन अपने आप में इतना समर्थ है कि मृत्यु को चुनौती देते हुए, वह अनादिकाल से लेकर अद्यावधि अपना अस्तित्व बनाए हुए है और सर्वभक्षी विभीषिकाओं से जूझते हुए, वह यही उद्‌घोष कर रहा है कि अनंत काल तक उसी प्रकार बना रहेगा जैसा कि अब है।

परिस्थितियाँ आती हैं और चली जाती हैं। विपन्नताएँ त्रास दिखाती हैं और धमकी देती हैं कि वे पलटकर या कुचलकर रख देंगी। इतने पर भी जीवन, जीवन ही है। वह अपनी गरिमा सिद्ध करते हुए सदा से यही कहता रहा है कि मरण उसका स्वभाव नहीं। कपड़ा बदलने से भी शरीर यथावत् बना रहा है। परिस्थितियों की विषमता मात्र कलेवर में उलट-पुलट कर सकती है। उससे जीवन की मूल सत्ता पर कोई आँच नहीं आती। मृत्यु और जीवन के युद्ध का परिणाम इतना ही निकलता रहता है कि मौत ने कलेवर की कुछ धज्जियाँ उधेड़ ली; जीवन खीजा तो; पर नंगा होने का अवसर नहीं आया। उसने पुराना छिनने के साथ ही नया आवरण ओढ़ लिया।

यह विचार सही नहीं कि सुविधाजनक परिस्थितियों में निर्वाह होता है। असुविधाएँ और प्रतिकूलताएँ आघात कितना ही बड़ा क्यों न लगा दें, पर वह नष्ट करने में कभी सक्षम नहीं हो सकती, मौत जीवन को हरा नहीं सकती। मरण के बाद जन्म का सत्य सुनिश्चित है। जन्मने के उपरांत मरना पड़ता है, यह तो परिवर्तन चक्र का घुमाव अथवा मोड़ मात्र है।

जीवन मात्र मनुष्य आकृति में ही नहीं, अन्य छोटे-बड़े प्राणधारियों के रूप में भी विद्यमान है और उसकी सत्ता उन अदृश्य सूक्ष्मजीवियों में भी विद्यमान है, जो नेत्रों अथवा अन्य इंद्रियों से पहचाने नहीं जाते, फिर भी सामर्थ्य और सक्रियता की दृष्टि से इतने बलिष्ठ हैं कि उनकी तुलना अपने कलेवर के अनुरूप सिंह और हाथी भी नहीं कर सकते हैं। प्रतिकूलताओं से जूझने को अपना अस्तित्व हर स्थिति में बनाए रहने की उनमें अद्‌भुत शक्ति है, जबकि बड़े आकार वाले प्राणी तनिक-सी दुर्घटनाओं के कुचक्र में फँसकर ही चीं बोल जाते हैं।

जीवन न केवल अपनी धरती पर ही है, वरन् वह ब्रह्मांड के असंख्य ग्रह-पिंडों पर विभिन्न आकृति और प्रकृति अपनाए हुए

विद्यमान है। स्थानीय परिस्थितियों के अनुरूप उसने अपने निर्वाह का संतुलन बिठा लिया है।

हार्वर्ड विश्वविद्यालय में जीव विज्ञान के प्राध्यापक डॉ० जार्ज वाल्ड के अनुसार यद्यपि मंगल पहला ग्रह है, जहाँ जीवन की खोज पृथ्वी के वैज्ञानिक कर रहे हैं तथापि ऐसे एक अरब ग्रह हैं, जहाँ जीवन होने की संभावना है।

हमारी आकाश गंगा में एक अरब ग्रह हैं। इससे परे उन्नीस अरब अन्य आकाशगंगाएँ हैं, जिनमें से प्रत्येक में दस अरब ग्रह हैं। वैज्ञानिकों का वर्तमान अनुमान यह है कि इन सभी ग्रहों में से एक से पाँच प्रतिशत तक ग्रहों में जीवन अवश्य विद्यमान है, क्योंकि इतने प्रतिशत तक ग्रह जलवायु और संरचना में हमारी पृथ्वी के समान हैं।

पृथ्वी से पृथक् ग्रहों में जीवन की खोज मनुष्य द्वारा जारी है। अमेरिका के मेरीलैंड विश्वविद्यालय के रासायनिक विकास-संस्थान के निर्देशक डॉ० सिरिल पोन्नेमपेरुमा ने पिछले दिनों भारतीय विज्ञान काँग्रेस में बताया था कि ब्रह्मांड से संदेश प्राप्त करने का प्रयास निरंतर चल रहा है। अनेक वैज्ञानिकों की मान्यता है कि सिर्फ हमारे ही नभ-मंडल में १० लाख सभ्यताएँ अस्तित्व में हैं। इन उन्नत सभ्यताओं का पता लगाने के लिए भारी संख्या में विशाल टेलिस्कोप लगाए गए हैं।

ग्रीन बैंक, वेस्ट वर्जीनिया में 'ओस्मा' नामक योजना के अंतर्गत सुदूर नक्षत्र लोकों की सभ्यताओं से रेडियो-तरंगों द्वारा संपर्क स्थापित करने का कार्यक्रम चलाया गया। वैज्ञानिकों का कहना है कि चार बार इस संपर्क का कोई उत्तर प्राप्त हुआ। यद्यपि अभी तक उसका अर्थ समझा नहीं जा सका है। इस प्रयास से यह आशा बँधी है कि अन्य ग्रह-नक्षत्रों के प्राणी निकट भविष्य में न केवल पृथ्वी के मनुष्यों से वरन् अन्य लोकों के निवासी जीवधारियों के साथ संपर्क बनाने और मेल-जोल बढ़ाने में समर्थ हो सकेंगे।

अनुकूलताओं में ही जीवन रह सकता है, यह बात तो कही जाती है, पर वह अनुकूलता क्या हो सकती है ? इसकी परिभाषा कर सकना संभव नहीं हो पा रहा। अत्यधिक गर्मी से अथवा अत्यधिक ठंड से जीवन का अस्तित्व खतरे में पड़ जाता है, यह कहा जाता है, पर अनुभव ने यह बताया कि बात ऐसी नहीं है। गर्मी और ठंडक की अतिशय सीमा में भी जीवन की सत्ता बनी रह सकती है।

वैज्ञानिक इस संभावना को देखकर अन्य ग्रहों पर जीवन हो सकने की आशा से भर उठे हैं, कि जीवन अत्यंत विषम परिस्थितियों में भी पनप सकता है। खौलते हुए पानी से भी अधिक तापमान पर और जमी हुई बर्फ से बहुत अधिक ठंडक में, जीवन-क्रम सहज संभव है।

३३ वर्ष की आयु में नोबल-पुरस्कार से सम्मानित जीव वैज्ञानिक डॉ० जोशुआ लेडरवर्ग ने कहा है कि अन्य ग्रहों में भी जीवन की विद्यमानता की खोज के पूर्व हमें यह जान लेने का प्रयास करना आवश्यक है कि पृथ्वी पर जिस प्रकार जीवन का विकास हुआ है, उससे भिन्न भी कोई क्रम जीवन-विकास का संभव है या नहीं ? यदि संभव है तो वह कौन-सा क्रम है ?

वनस्पतियाँ कहाँ उग सकती है, कहाँ नहीं ? अब इस प्रश्न पर कोई विराम चिह्न लगा सकता है। उत्तरी ध्रुव जैसे शून्य तापमान से भी नीचे के क्षेत्र में शाक-भाजी उगाने में सफलता प्राप्त कर ली गई है तथा खाद्य-पदार्थों का उत्पादन ऐसी परिस्थितियों में भी संभव हुआ है, जहाँ के संबंध में अब तक जीवनशास्त्री यही कहते रहे हैं कि उनमें उत्पादन नहीं हो सकता।

यूनियन कार्बाइड रिसर्च इंस्टीच्यूट, न्यूयार्क में वैज्ञानिकों ने मंगल ग्रह जैसा वातावरण कृत्रिम रूप से उत्पन्न करने का प्रयोग किया। उस वातावरण में ९८ प्रतिशत आर्गन गैस और २ प्रतिशत ऑक्सीजन रखी गयी। तापमान शून्य से दस डिग्री सेंटीग्रेड नीचे

रखा गया। इस कृत्रिम वातावरण में कुकरबिटेसी कुल के खीरे, ककड़ी जैसे तीस प्रकार के पौधों के बीज सफलतापूर्वक उगाए गए। यद्यपि ऑक्सीजन नाम मात्र को थी, तो भी ये बीज यहाँ पनपे। एक अन्य प्रयोग में काँच के एक बर्तन में मिट्टी के कई नमूने लेकर, उनमें कुछ जीवाणु रखे गए। बर्तन के भीतर के वातावरण में कार्बन-डाई-ऑक्साइड, नाइट्रोजन और आर्गन गैस रखी गयी, ऑक्सीजन नहीं रखी गयी। पानी अत्यल्प मात्रा में रखा गया। इन बर्तनों को १६ घंटे तक शून्य से २५ डिग्री सेंटीग्रेड नीचे के तापमान पर रखा गया। फिर आठ घंटे तक शून्य से २५ डिग्री ऊपर रखा गया। महीनों बाद भिन्न-भिन्न अवधियों में इन नमूनों की जाँच की गयी। पाया गया कि कुछ किस्म के जीवाणु इस स्थिति में भी जी लेते हैं और कुछ तो प्रजनन द्वारा अपनी आबादी भी बढ़ा लेते हैं। शैवाल और फफूँदी के मिले-जुले रूप वाली लाइकेन नामक वनस्पति भी इस वातावरण में खूब पनपी।

एक अन्य प्रयोग में एरोबैक्टर, एरोजीन्स तथा कुछ अन्य जीवाणु कार्बन-डाई-ऑक्साइड, नाइट्रोजन तथा थोड़ा-सा पोषक माध्यम डालकर सील बंद कर दिए गए। प्रतिदिन साढ़े उन्नीस घंटे तक इनको शून्य से ७५ डिग्री सेंटीग्रेड नीचे के तापक्रम पर रखा जाता, फिर साढ़े चार घंटे सामान्य तापमान पर। कई दिनों तक यही क्रम चला। प्रयोग के बाद इन सूक्ष्म-जीवियों की संख्या पूर्वापेक्षा चार हजार गुनी हो गयी।

पानी को जीवन का आधार माना जाता है, पर अब ऐसी संभावनाएँ सामने आई हैं कि पानी के स्थान पर दूसरे विकल्प भी हो सकते हैं, जिनके सहारे जीवन-निर्वाह संभव हो सके।

वैज्ञानिकों का एक अनुमान यह है कि मंगल एवं अन्य ग्रहों पर पानी का स्थान अमोनिया ले सकता है। वैज्ञानिक ए० जे० मी० के अनुसार अमोनिया में जल से अधिक तरलता होती है और वह अधिक अच्छा विलायक है। जलीय रसायन (एक्वाकेमिस्ट्री) की तरह अमोनिया रसायन (अमोना-केमिस्ट्री) के अंतर्गत जल के तुल्य

समस्त अभिक्रियाएँ संपन्न होती देखी गयी हैं। जल और अमोनिया में बहुत-से गुण समानांतर पाए गये हैं। प्रोफेसर बर्नाल, एक्सेल इत्यादि का मत है कि संभव है, अन्य ग्रहों पर जीवन का आधार अमोनिया हो, क्योंकि वैज्ञानिकों के अनुसार पृथ्वी जब अपनी शैशवास्था में थी, तब इसके वातावरण में हाइड्रोजन, अमोनिया और मीथेन का ही आधिक्य था।

जल एवं अमोनिया के गुण-साम्य के आधार पर वैज्ञानिक इस संभावना पर विचार कर रहे हैं कि मंगल आदि के मानव-स्नान, पान आदि के लिए जल के स्थान पर अमोनिया का ही प्रयोग करते होंगे।

इन तथ्यों पर दृष्टिपात करने से विदित होता है कि जीवन निश्चित रूप से अमर है। उस अविनाशी को न तो कोई प्रतिकूलता नष्ट कर सकती है और न मृत्यु के लिए ही उसकी सत्ता मिटा सकना संभव है।

❐ ❐

देवलोक और असुरलोक देखना हो तो

मनुष्य की संभावनाएँ असीम होते हुए भी उसे ससीमता अपने बंधन में जकड़े रहती है और प्रकृति के रहस्यों का ज्ञान प्राप्त करने के लिए आतुर होते हुए भी वह विशाल समुद्र में से कुछ सीपियाँ और घोंघे ही ढूँढ़ पाता है।

पिछले दो सौ वर्षों के क्षेत्र में हम बहुत आगे बढ़े हैं। अंतरिक्षीय खोजें अपने समय की विशेष उपलब्धियाँ हैं। इससे पूर्व अणु विस्फोट भी चकित कर चुका है। अब हम अद्यावधि प्राप्त जानकारियों से भी कहीं अधिक जिस विस्मयजनक उपलब्धियों के क्षेत्र में प्रवेश करने जा रहे हैं। वह है प्रतिपदार्थ और इससे बनी हमारे साथ-साथ रह रही एक समानांतर दुनिया। इसका ज्ञान प्राप्त करके हम जानेंगे कि काया और छाया की तरह दो संसार न जाने कबसे साथ-साथ जुड़े हुए हैं और एक-दूसरे पर निर्भर रह रहे हैं।

अपनी परिचित अणु सत्ता से इस अपने विश्व में दीख पड़ने वाले पदार्थ बने हैं। उन्हीं के उपयोग से अपना काम चलता है। अब यह पता चला है कि अणु का प्रतिद्वंद्वी एक और प्रतिअणु है। पदार्थ के प्रतिद्वंद्वी प्रतिपदार्थ का भी अस्तित्व मौजूद है। इतना ही नहीं इनसे बनी हुई एक अनोखी प्रतिद्वंद्वी दुनिया भी मौजूद है। अब तक हम इस सबसे परिचित नहीं रहे। यह ठीक है, पर उससे क्या—स्थिति तो हमारी जानकारी होने, न होने की परवाह किये बिना यथावत् बनी ही हुई है।

एंटीमैटर—एंटीयुनिवर्स की चर्चा अब कोई कल्पना या संभावना नहीं रही, वरन् एक ऐसी यथार्थता बन गई है, जिस पर तेजी से खोज की जा रही है और यह पता लगाया जा रहा है कि इन दोनों प्रतिद्वंद्वी संसारों के बीच आदान-प्रदान का दरवाजा किस तरह खुल सकता है ?

इस दिशा में यदि थोड़ी और सफलता मिल गई है तो पौराणिक उपाख्यानों में वर्णित देवलोक और असुरलोक की गाथाओं को हम साकार देखेंगे और अनुभव करेंगे कि भगवान् और शैतान की तरह चिरंतन काल से दो प्रतिद्वंद्वी संसार आपस में गुँथे हुए चले आ रहे हैं। उनके सामान्य सहकार को बढ़ाना संभव हो सके तो अपनी दुनिया इतनी बड़ी सामर्थ्य करतलगत कर लेगी, जिसके सहारे मात्र पृथ्वी तो क्या ब्रह्मांड के विशाल क्षेत्र पर अधिकार कर लेना और बिखरी संपदाओं से लाभ उठा सकना उसके लिए संभव हो जायेगा। फिर मनुष्य विश्व का मुकुटमणि नहीं, ब्रह्मांड का अधिनायक बनकर रहेगा।

इस सुखद संभावना के साथ-साथ यह विभीषिका भी मौजूद है कि प्रतिपदार्थ की सत्ता डायनामाइट, बारूद और अणु विस्फोट से निकलने वाली ऊर्जा से भी अधिक खतरनाक है। इस क्षेत्र में एक भी चिनगारी गलत-सलत ढंग से पड़ गई तो फिर किसी की खैर नहीं—न पृथ्वी की, न सौरमंडल की और न समूचे ब्रह्मांड की। उस विस्फोट से पूरे ब्रह्मांड का आधार ही बदल सकता है और प्रस्तुत जड़-चेतन की स्थिति में आमूल-चूल परिवर्तन हो सकता है। यदि विभीषिका सचमुच कभी साकार हुई तो उस महाक्रांति के बाद की स्थिति कल्पनातीत होगी, तब प्राणधारी भी अबकी अपेक्षा सर्वथा भिन्न प्रकार के होंगे और उनकी आकृति एवं प्रकृति की हम लोगों के साथ कोई समानता न होगी, तब ज्ञान-विज्ञान के आधार भी उलट जाएँगे। अभी तो उस महाप्रलय का स्वरूप समझना ही कठिन पड़ रहा है; फिर महाक्रांति के बाद होने वाले अभिनव सृजन और उसमें प्राणियों की स्थिति का स्वरूप किस प्रकार सोचा जा सकता है ?

प्रतिपदार्थ की खोज बड़ी सावधानी किंतु तत्परता के साथ हो रही है। अंतरिक्ष पर अधिकार करने के लोभ का संवरण न किया जा सका, तो फिर 'प्रतिविश्व' की सत्ता को जानने और

उसके साथ तालमेल बिठाकर और भी बहुत कुछ पाने की संभावना को आँख से ओझल किया ही कैसे जा सकता है ? 'प्रतिपदार्थ' 'प्रतिविश्व' आज के विज्ञान जगत् का सर्वोपरि आकर्षण है। उसकी खोज में अत्यंत गंभीर प्रयास सावधानी के साथ किये जा रहे हैं।

पदार्थ के प्रति पक्षी "प्रतिपदार्थ" की कल्पना तो सन् १९२८ में ही सापेक्षतावादी क्वांटम सिद्धांत के अंतर्गत ही कर ली गई थी, पर तब उस संबंध में वैसे प्रत्यक्ष प्रयोग संभव न थे जैसे कि आज हो गये हैं। जिस प्रकार क्रिया की प्रतिक्रिया और ध्वनि की प्रतिध्वनि होती है, उसी प्रकार 'पदार्थ' के साथ-साथ 'प्रतिपदार्थ' भी काम करता है। इन उभयपक्षीय अस्तित्वों से ही विश्व में विविध प्रकार की गतिविधियाँ संभव हो रही हैं। यदि किसी डिब्बे में गोलियाँ खचाखच भर दी जाएँ तो फिर उनका हिलना-डुलना भी संभव न हो सकेगा; इसी प्रकार यदि संसार में सर्वत्र परमाणु ही ठसे पड़े हों तो फिर उनका हिलना-डुलना ही बंद हो जायेगा और सर्वत्र निस्तब्ध नीरवता एवं स्थिरता दिखाई पड़ेगी। यह प्रतिपदार्थ ही है, जो अणुओं को अपनी हलचलें जारी रखने का अवसर दे रहा है।

रूस और अमेरिका के वैज्ञानिक इस प्रति पदार्थ को प्राप्त करने की जी तोड़ प्रयत्न कर रहे हैं। नाभिकीय कणों को तीन हजार करोड़ इलेक्ट्रॉन वाट की गर्मी देकर एक नया प्रतिकण प्राप्त किया गया है—'ड्यूट्रान' हाइड्रोजन और हीलियम के प्रतिकण प्राप्त करने की आशा अब बलवती होती जा रही है। पर अभी इस कठिनाई का हल नहीं निकला है कि उन्हें सुरक्षित कैसे रखा जाये ? इनकी एक बुरी आदत यह है कि अकेले अपना अस्तित्व बनाए रखने में असमर्थ होते हैं। उत्पन्न होते ही अन्य कणों के साथ घुलते हैं और अपना अस्तित्व खो बैठते हैं। यदि इसे सुरक्षित रखा जा सकना संभव हो गया, तो पदार्थ और प्रतिपदार्थ का घर्षण संभव हो जायेगा और उस प्रक्रिया से इतनी अधिक ऊर्जा प्राप्त

की जा सकेगी कि संसार भर में सस्ती बिजली की कमी कहीं भी अनुभव न की जाए। तब छोटे-छोटे सूर्य उगाये जा सकेंगे और उनसे आवश्यक ऊर्जा इच्छानुसार और सुविधानुसार ग्रहण करते रह सकना संभव हो जायेगा।

अंतरिक्ष से प्राप्त रेडियो-तरंगें बताती हैं कि किसी क्षेत्र में प्रति द्रव्य बड़े परिमाण में उत्पन्न हो रहा है। यह उत्पत्ति कहाँ हो रही है ? इसके संबंध में विज्ञानी आल्फवेन का कथन है कि वह 'साइइग्लेस' और 'विर्गो' नीहारिकाओं में उबल रहा है और उससे नये-नये ऐसे ग्रह-नक्षत्रों का सृजन हो रहा है; जो इस प्रतिपदार्थ से ही बने हैं। वे उसका नाम चतुर्थ आयाम स्तर का प्लाज्मा बताते हैं और कहते हैं, उसकी सामर्थ्य अपने लोक में पाए जाने वाली आणविक ऊर्जा से कहीं अधिक सशक्त है।

कैलीफोर्निया विश्वविद्यालय में सन् १९७० में सबसे पहले "प्रतिकण" के अस्तित्व को कल्पना क्षेत्र में आगे बढ़ाकर प्रामाणिक स्तर पर खड़ा किया था। न्यूक्लियर इंटरएक्शन के दौरान प्रतिकण' का फोटो खींचा गया था। इसके लिए एक सैकिंड के पंद्रह अरबवें भाग में फोटो खींच सकने वाला यंत्र विशेष रूप से बनाया गया था और उस प्रमाणित प्रतिकण का नाम 'सेंटी ओमेगा माइनस' दिया गया था। तब से अब तक इन पाँच वर्षों में और भी कई प्रतिकण खोजे जा चुके हैं।

यह खोज तीन सिद्धांतों के आधार पर संभव हुई है—

(१) सापेक्षिता सिद्धांत द्वारा शक्ति के निगेटिव होने का प्रमाण प्रस्तुत करने से (२) क्वांटम मिकैनिक्स के समीकरण का हल प्रस्तुत करने से (३) वेवमिकैनिक्स के इलेक्ट्रान के गुणों की अभिनव विवेचना करने से।

सन् १९२८ में जब डिराक ने क्वांटम मिकैनिक्स के समीकरण का हल करते हुए इनर्जी के निगेटिव रूप की नई व्याख्या की और एंटी इलेक्ट्रान, पॉजिट्रान के अस्तित्व का प्रतिपादन किया तो तत्कालीन मूर्धन्य विज्ञानवेत्ताओं ने उनका

उपहास उड़ाया, पर पीछे खोज जारी रही। सन् १९३२ में जब एंटी इलेक्ट्रॉन के फोटो खिंचकर सामने आए तो वह बात प्रामाणिक ठहरा दी गई। सर्वविदित है कि ट्रांजिस्टर का आविष्कार 'होल' और 'इलेक्ट्रॉन' प्रक्रिया के सहारे ही संभव हुआ है। इसमें 'होल' वस्तुतः प्रतिइलेक्ट्रॉन का ही एक रूप है।

प्रतिइलेक्ट्रॉन के संबंध में एक सबसे बड़ी कठिनाई यह है कि उसका जीवन काल अत्यंत स्वल्प है। वह जन्म लेते ही इलेक्ट्रॉन के साथ संयुक्त हो जाता है और उस विलय से 'गामा' विकरण' उत्पन्न होता है।

प्रतिपदार्थ एवं प्रतिविश्व की खोज के आरंभिक दिनों में केवल इलेक्ट्रॉन का प्रतिद्वंद्वी, प्रतिइलेक्ट्रॉन ही खोजा जा सकता था, पर यह संभावना तो ध्यान में बनी ही रही कि इसी प्रकार अन्य कणों के प्रतिपक्षी, प्रतिद्वंद्वी, प्रतिकण हो सकते हैं। सन् १९५५ में इसका भी समाधान मिल गया। 'वेवाट्रान' नामक सूक्ष्मदर्शी यंत्र की सहायता से न्यूट्रॉन और प्रोटान के प्रतिपक्षी भी खोज लिए गए हैं। इससे सिद्धांततः प्रतिपदार्थ और प्रतिविश्व के अस्तित्व को स्वीकार कर लिया गया है और यह आशा बँध गई है कि कभी न कभी मनुष्य इस महादैत्य को अपना वशवर्ती बनाकर न केवल अपनी पृथ्वी का वरन् लोक-लोकांतरों का अधिपति बन सकने का स्वप्न साकार कर सकेगा।

अभी तक पदार्थ के संबंध में हमारा अनुभव बहुत स्वल्प है। अभी अपने हाथ केवल खंडन-क्रिया-फिशन—हाथ लगी है। यह कितनी कठिन और कितनी जटिल है; इसे वे लोग जानते हैं, जो परमाणु विस्फोट के साधन जुटाते हैं; उस कार्य में अत्यधिक ऊर्जा प्रयुक्त करनी पड़ती है। खंडन से अधिक कठिन संश्लेषण-फ्यूजन है। इससे खंडन की तुलना में कहीं अधिक शक्ति को प्रयोग के लिए जुटाना पड़ेगा। इससे भी बड़ी कठिनाई यह है कि संश्लेषण के लिए प्रयुक्त ऊर्जा और क्रिया से उत्पन्न प्रति-ऊर्जा और प्रतिक्रिया इतनी सशक्त होगी, जिसे

नियंत्रित रख सकना कम से कम आज की स्थिति में तो किसी भी प्रकार संभव नहीं है। प्रतिपरमाणु के संश्लेषण में अनुमानतः दस लाख डिग्री सेंटीग्रेड ताप उत्पन्न होगा। यह कितना भयंकर होगा, इसका अनुमान इस बात से लग सकता है कि पानी केवल १०० डिग्री सेंटीग्रेड गर्मी से ही उबलने और भाप बनकर उड़ने लगता है।

प्रतिअणु की शक्ति अपने जाने-माने अणु की तुलना में सहस्त्रों गुनी अधिक होगी। यदि वह हाथ लग जाए तो केवल हीलियम गैस से भी हम नया सूर्य बना सकेंगे और उसका मनचाहा उपयोग कर सकेंगे।

प्रतिपदार्थ में एक और बुरी आदत है कि वह जन्म लेते ही 'पदार्थ' में घुस पड़ता है और उसी में विलीन हो जाता है। यदि 'प्रतिपरमाणु' बन गया तो उसे वर्तमान परमाणु में घुस पड़ने से कैसे रोका जा सकेगा ? यह एक और भी बड़ा सिरदर्द है। संयोग से नई चीज की उत्पत्ति का सिद्धांत सर्वविदित है। प्रस्तुत परमाणुओं के साथ संभावित प्रतिपरमाणु जब संयुक्त होंगे तो न जाने किस नई शक्ति का उदय हो जाए। यदि वह सृजनात्मक न होकर ध्वंसात्मक हुई तो फिर अपनी पृथ्वी तो उससे माचिस की तीली की तरह खाक हो ही जाएगी। पूरे सौरमंडल और अपनी संपूर्ण आकाशगंगा का ही नक्शा बदल सकता है। तब जो कुछ आज दिखाई पड़ रहा है, उससे सर्वथा भिन्न प्रकार के दृश्य सामने आ खड़े हो सकते हैं।

प्रतिपदार्थ का अस्तित्व अब असंदिग्ध रूप से जान और मान लिया गया है और इस बात पर वैज्ञानिक जगत् में पूर्ण सहमति हो गई है कि इस ब्रह्मांड के अनेक क्षेत्र प्रतिपदार्थ से बने हुए हैं और उनकी भौतिक स्थिति अपनी पृथ्वी की परिस्थितियों से सर्वथा भिन्न—लगभग उलटी है। जिस प्रकार अपनी दुनिया है 'प्रतिपदार्थ तनिक-सी झाँकी देकर लुप्त हो जाता है, ठीक उसी प्रकार उन प्रतिपदार्थ से बने लोकों में अपने क्षेत्र का पदार्थ हलकी-सी झलक

दिखलाकर वहाँ की संरचना में घुलता और समाप्त होता रहता होगा।

तंत्र साधना में 'छाया पुरुष' साधना का विस्तृत विवरण मिलता है। यह छाया पुरुष क्या है ? जीवित मनुष्य का एक सशक्त प्रतिबिंब, जिसे साधन प्रयोगों द्वारा अपने वशवर्ती बनाया जाता है और वह किसी भिन्न सत्ता वाले अदृश्य व्यक्ति की तरह आज्ञानुसार काम करता है। इसकी क्षमता साधनकर्त्ता की अपेक्षा कहीं अधिक होती है।

छाया पुरुष का अस्तित्व भले ही संदिग्ध हो, पर छाया विश्व और छाया पदार्थ की सिद्धि अब वैज्ञानिक जगत् में मान्यता प्राप्त कर चुकी है और उसे पकड़ने, वशवर्ती करने के लिए प्रबल चेष्टा हो रही है।

दर्पण के सामने खड़े होने पर एक अपने ही जैसा मनुष्य दीखता है, पर वह होता है उलटा। जिधर हमारा दाहिना हाथ होता है उधर उसका बाँया हाथ। अन्य अंग भी उलटे होते हैं। फोटोग्राफी की प्लेट पर भी यही होता है। अपने काले बाल सफेद होते हैं और सफेद दाँत काले। इसे नेगेटिव प्लेट कहते हैं। इसे उलटकर फिर फोटो खींचा जाता है, तब कहीं सीधी तस्वीर आती है। बिंब का प्रतिबिंब उलटा होता है। इसे मिराइमेज कहते हैं—काया और छाया का, छाया और प्रतिच्छाया का यही क्रम चलता है। विपरीतता के लिए अँग्रेजी में 'एंटी' शब्द प्रयोग होता है।

पदार्थ की सबसे छोटी इकाई परमाणु है। इस परमाणु के भी कई अंग-प्रत्यंग हैं। इस परमाणु परिवार को ही पदार्थ का सूक्ष्मतम अंग माना जाता था, पर अब इसके साथ एक सहोदर भाई और जुड़ गया है वह है 'प्रतिपदार्थ'। पार्टिकल्स अब अकेले नहीं हैं, उनके साथ—'एंटी पार्टिकल्स' की चर्चा भी जोरों पर है।

परमाणु कितना बड़ा होता है ? इसका मोटा अनुमान इस प्रकार लगा सकते हैं कि चीनी के एक दाने में लगभग एक हजार

शंख परमाणु होंगे, जो ठोस नहीं है। उनके भीतर मध्य भाग में नाभिक होता है, नाभिक (न्यूक्लियस) को केंद्र मानकर, उसके चारों ओर पार्टिकल्स उसी प्रकार चक्कर लगाते हैं, जिस प्रकार सूर्य के इर्द-गिर्द उसके ग्रह-उपग्रह। नाभिक का निर्माण प्रोट्रॉन और न्यूट्रॉन कणों के संयोग से बना होता है, उसके चारों ओर चक्कर लगाने वाले कण इलेक्ट्रॉन कहलाते हैं। इलेक्ट्रॉनों में विद्युत् का ऋण आवेश और प्रोट्रॉनों में धन आवेश होता है। न्यूट्रॉनों पर कोई विद्युत् आवेश नहीं होता। अब कुछ और कण भी खोज निकाले गये हैं और उन्हें मेसान, न्यूट्रीन, फोटॉन, सिगमा प्लस, सिगमा माइनस, सिगमा जीरो आदि नाम दिए गए हैं।

मोटे तौर से सभी परमाणु एक जैसे होते हैं, पर उनकी भीतरी रचना में प्रोट्रॉन, इलेक्ट्रॉन आदि की संख्या का जो अंतर रहता है, उसी आधार पर उनकी भिन्नता रहती है और भिन्न स्तर के परमाणुओं का समूह विभिन्न प्रकार के पदार्थों के अस्तित्व रूप से सामने आता है।

• छाया पुरुष की साधना तांत्रिक उपासना के क्षेत्र में बहुत समय से प्रचलित है। छाया लोक की चर्चा बहुत समय से कही-सुनी जाती रही है; अब यह संभावना प्रामाणिक स्तर पर स्वीकार की जा रही है कि एक दिव्यलोक हमारे साथ-साथ ही रह रहा है; उसमें न केवल पदार्थ ही भरा है, वरन् प्राणी भी निवास कर रहे हैं। वे प्राणी देव-दानवों की कल्पना से मिलते-जुलते हो सकते हैं और जीवाणुओं-विषाणुओं जैसी भी। हम मनुष्यों से वे समर्थ, अपरिचित, उदासीन भी हो सकते हैं और संबद्ध-सहचर बनकर हमारी परिस्थितियों के निर्माण में भारी योगदान करते हुए भी पाए जा सकते हैं। कहा नहीं जा सकता कि इस अविज्ञात संसार में भरा हुआ जड़-चेतन हमारे लिए संपर्क बढ़ाने योग्य है या अयोग्य। इन रहस्यों का उद्घाटन भविष्य में होगा। आज तो उसका स्वरूप समझने का प्रारंभिक

कदम ही उठाया जा सकना संभव है, वह सो ही उठ भी रहा है।

प्रकृति के रहस्यों के पर्त जैसे-जैसे खुल रहे हैं, वैसे-वैसे मानव बुद्धि अधिकाधिक हतप्रभ होती जा रही है और अपनी असीमता की गर्वोक्ति पर पुनर्विचार कर रही है। खोज किसी भी सीमा तक बढ़ जाय—हाथ कुछ भी लग जाये, तब भी विराट् विश्व और मानव प्राणी की तुलनात्मक स्थिति देखते हुए 'नेति-नेति' की उक्ति ही दुहराई जाती रहेगी।

■ देवतत्त्व और असुरतत्त्व

इस विश्व में देवतत्त्व और असुरतत्त्व दोनों का अस्तित्व है। देवत्व का पोषण अभिवर्धन और सम्मान किया जाना चाहिए, साथ ही असुरता की दुरभिसंधियों तथा आक्रमणों से अपना बचाव भी करना चाहिए।

सज्जनों की सबसे बड़ी विशेषता यह होती है कि वे अपने आदर्श और व्यवहार पर स्थिर रहते हैं। सज्जनता की रीति-नीति बदलते नहीं। परस्पर टकराते भी नहीं। कोई उनसे टकराए तो टूटते भी नहीं। अपनी दिव्य सत्ता को अक्षुण्ण रखते हैं और किसी अनात्म तत्त्व के सामने आत्म-समर्पण नहीं करते। अपना स्वाभिमान और स्वावलंबन हर भली-बुरी स्थिति में अक्षुण्ण बनाए रहते हैं।

देव तत्त्वों की तरह, सज्जनों की तरह परमाणु की मूल सत्ता होती है। यह अपनी शाश्वत और सनातन विशेषता को नष्ट नहीं होने देती।

यह परमाणु सृजन के काम में ही लगे रहते हैं। वे इकट्ठे होते हैं, जुड़ते हैं, मिल-जुलकर रहते हैं। उनकी यह संगठन और सृजन की भावना ही विभिन्न पदार्थों का निर्माण करती है। नींव के पत्थरों की तरह, अदृश्य और अविदित रहकर, वे सृजन के कार्य में अथक रूप से संलग्न हैं। इस सुंदर विश्व में जो विशालता दीख

पड़ती है, वह इन छोटे परमाणुओं के पारमार्थिक क्रिया-कलाप का परिणाम ही है। इन्हें इस धरती के, सृजनकर्त्ता, पोषक और परिवर्तनकारी—ब्रह्मा, विष्णु, महेश कहा जाए तो कुछ अत्युक्ति न होगी।

छोटे परमाणु एकाकी नहीं हैं। उनके भीतर और भी छोटा परिवार है। इसमें भले और बुरे दोनों तत्त्वों का निर्वाह होता है।

इलेक्ट्रॉन एवं प्रोटॉन के मूल कणों को विभक्त नहीं किया जा सकता। उनकी परस्पर टक्कर या सम्मिश्रण का परिणाम इतना भर हो सकता है कि वे परस्पर मिलकर अंतःक्रिया या मिश्रित क्रिया द्वारा नवीन कणों या नवीन नाभिकों में परिणत हो जाए।

परमाणु विद्या के अन्वेषणों के अनुसार अब तक मूल कण लगभग २० की संख्या में खोजे जा चुके हैं। फोटॉन, इलेक्ट्रॉन, प्रोटॉन, न्यूट्रॉन, पोजीट्रॉन, न्यूट्रिनो, मेसान, न्यू मेसान, पाई मेसान, के० मेसान, हाइपरान, डयूट्रॉन जैसे कणों से ही यह सारा विश्व विनिर्मित हुआ है। इन्हें विश्व भवन की ईंटें ही कहना चाहिए।

इसी दैवी अणु शक्ति में एक प्रतिरोधी असुर तत्त्व भी मौजूद है। समय-समय पर यही रंग बदलता है, टूटता-फूटता है और विरोध विग्रह उत्पन्न करता है। कुचक्रों का यही शिकार होता है और अंततः विनाश जैसी दुर्गति भी इसी की होती है। इस संसार में देवत्व ही नहीं असुरत्व भी मौजूद है। संभवतः यही परिचय देने के लिए यह प्रतिक्षण विद्यमान हो।

परमाणु के प्रत्येक मूल कण के साथ विपरीत प्रकृति का एक 'प्रतिकण' भी रहता है। जैसे इलेक्ट्रॉन का प्रतिकण पोजीट्रॉन, प्रोटान का एंटीप्रोटान, न्यूट्रान का एंटीन्यूट्रान, न्यूट्रिनों का एंटी न्यूट्रिनो है। मेसानों में भी यह विरोधी प्रति कण रहते हैं।

सभी प्रतिकण अल्पजीवी होते हैं। यह प्रतिकण जब अपने समान सामान्य कण से टकराते हैं, तो दोनों एक-दूसरे से भिड़ जाते हैं और भयंकर विस्फोट उत्पन्न होता है। उसी से विकरण उत्पन्न होता है और भयानक ऊर्जा फैलती है।

यह विरोधी प्रकृति के प्रतिकण कहाँ से आते हैं ? क्यों अवरोध उत्पन्न करते हैं ? कुछ समझ में नहीं आता। वैज्ञानिकों का अनुमान है कि इस ब्रह्मांड में शायद कोई अन्य विश्व ऐसा है, जिसे सर्वथा विपरीत 'प्रतिविश्व' कहा जा सके। उसकी संरचना इन विपरीत प्रकृति के प्रतिकणों से ही हुई होगी। वहाँ सब कुछ यहाँ से उलटा ही होता होगा। इस लोक में सारा पदार्थ—एंटी मैटर होगा। वहाँ के नाभिक—एंटीप्रोट्रॉन और एंटीन्यूट्रॉन के बने होंगे। उन प्रति नाभिकों के इर्द-गिर्द इलेक्ट्रॉन के स्थान पर पोजीट्रॉन भ्रमण करते होंगे। वहीं से यह प्रति कणों का प्रवाह धरती पर आता होगा और यह कि अणु रचना के साथ उसका सम्मिश्रण यह परस्पर विरोधी स्थिति उत्पन्न करता होगा। यह प्रतिविश्व कहाँ है ? यह ढूँढ़ा नहीं जा सका, पर उसका अस्तित्व तो एक प्रकार से मान ही लिया गया है।

हमें अपने चिंतन और व्यवहार में इस तथ्य को ध्यान में रखना चाहिए कि इस विश्व में जहाँ देव सत्ता का वर्चस्व है, वहाँ असुर सत्ता भी हर जगह मौजूद है। न कोई व्यक्ति या पदार्थ पूर्ण शुद्ध है न अशुद्ध। गुण, दोष की मात्रा सर्वत्र मौजूद है। हमें गुणों को देखना, समझना, ढूँढ़ना और बढ़ाना चाहिए, क्योंकि वे ही स्थिर और सत है। असुरत्व भी हर जगह मौजूद है, उससे सतर्क रहें, बचें। मनुष्य में यह कुशलता बनी रहे, वह नीर-क्षीर, विवेक कर सकने में समर्थ रहे। इस प्रशिक्षण के लिए भगवान् ने संसार में असुरता का अंश रखा है। परमाणु में भी प्रतिकण अंश भेजा है। भेजने वाली असुर सत्ता संपन्न दुनिया भी कहीं है। वह बाहर भी है और भीतर भी। उससे सतर्क रहना भी उतना ही आवश्यक है, जितना देवत्व का अवलंबन।

■ पदार्थ और प्रतिपदार्थ

धूप के साथ छाया जुड़ी रहती है। ध्वनि की प्रतिध्वनि होती है, रबड़ की गेंद को दीवार पर मारने से लौटकर वह वापस आती है। प्रकाश का प्रतिद्वंद्वी अंधकार मौजूद है। पेंडुलम एक ओर चला देने से उसके आगे-पीछे चलने की क्रिया अनायास ही चलने लगती है। हृदय की धड़कन, श्वास-प्रश्वास, आकुंचन-प्रकुंचन जैसे परस्पर विरोधी क्रियाकलाप ही शरीर को जीवित रखते हैं। समुद्र में ज्वार-भाटे के कारण ही लहरों की तरंग श्रृंखला चलती है। 'पिस्टन' द्वारा गति तभी उत्पन्न होती है, जब वह आगे-पीछे चलने का क्रम अपनाता है। शक्ति-तरंगों के कंपन आगे-पीछे बढ़ने हटने की हल-चल पर ही निर्भर है। क्रिया की प्रतिक्रिया पर ही इस विश्व का सारा क्रियाकलाप चल रहा है। पुण्य का प्रतिद्वंद्वी पाप, देव विरोधी दानव, भगवान् विरोधी शैतान, सत विरोधी तम, स्वर्ग का प्रतिद्वंद्वी नरक; इसी विरोध विपक्ष के आधार पर अध्यात्म जीवन की गतिविधियाँ कार्यान्वित हो रही हैं।

अब पता चला है कि विश्व का प्रतिद्वंद्वी भी एक प्रतिविश्व है, जिसका अस्तित्व उस विश्व के समान ही मौजूद है, जिससे कि हमारा निरंतर काम पड़ता है और जिसकी शक्तियों से अवगत मानव समाज ने पदार्थ विज्ञान की शोध की है और उसी आधार पर विविध आविष्कारों के द्वारा अनेकों सुविधाओं की, शक्ति और सामर्थ्य की, उपलब्धियाँ प्राप्त की जा सकी हैं।

प्रतिविश्व का अन्वेषण होना अभी बाकी है। उसकी शक्तियों का जानना और उन्हें प्रयोग में लाने का श्रीगणेश अगले दिनों करना होगा, क्योंकि वर्तमान उपलब्धियाँ एकांगी एवं एकांकी हैं। उनको पूर्णता में तभी परिणत किया जा सकेगा, जब प्रतिविश्व की शक्तियों को प्राप्त कर लिया हो। फिर एक की कमी दूसरी से पूरी होगी और एक का ईंधन दूसरी से मिलेगा, तब विविध यंत्रों के संचालन के लिए तेल, कोयला, भाप,

बिजली, एटम की शक्तियों के द्वारा ईंधन प्राप्त करने की आवश्यकता न पड़ेगी। विश्व और प्रतिविश्व का परस्पर संतप्त समन्वय हो जाने में पदार्थ और प्रतिपदार्थ एक-दूसरे का अभाव पूरा कर दिया करेंगे और लगभग सभी प्रयोजन स्वसंचालित पद्धति द्वारा पेंडुलम प्रक्रिया की भाँति अपने आप चलते रहेंगे और जब जिस कार्य की आवश्यकता होगी, उसे पदार्थ और प्रति पदार्थ का ताल-मेल बिठा देने की प्रणाली संचालित कर देने मात्र से सब कुछ गतिशील हो जाया करेगा।

प्रतिविश्व की—प्रतिपदार्थ की ओर जबसे वैज्ञानिकों का ध्यान गया है, तबसे एक नई हलचल, एक नई उमंग सर्वत्र दिखाई पड़ने लगी है। उसकी खोज के लिए सिद्धांत और आधार तलाश किए जा रहे हैं, क्योंकि जिन सिद्धांतों के आधार पर प्रस्तुत पदार्थ विज्ञान का ढाँचा खड़ा किया गया है, वे प्रति पदार्थ के लिए लागू न किये जा सकेंगे, वरन् उसमें लगभग उलटे आधारों का कहीं-कहीं तिरछे लहराते सिद्धांतों का प्रयोग करना पड़ेगा, जब उसकी रूपरेखा बन जाएगी, तब आशा की जाती है कि एक ऐसी प्रतिविद्युत् शक्ति का आविष्कार किया जा सकेगा, जो उपलब्ध विद्युत् से कहीं अधिक शक्तिशाली होगी। उसके माध्यम से प्रस्तुत विद्युत् उत्पादन के लिए जो साधन जुटाने पड़ते हैं, उनमें से किसी को भी आवश्यकता न रहेगी। बटन दबाने भर की देर होगी कि आकाशव्यापी विद्युत् और प्रतिविद्युत् परस्पर मिलकर प्रचुर परिमाण में बिजली पैदा करने लगेंगी और यह क्रम तब तक चलता रहेगा, जब तक उन दोनों को पृथक् न किया जाये।

यह ब्रह्मांड अणु गठित पदार्थ से भरा है, जिसे मैटर कहते हैं। पंचतत्त्व और उनसे बने अनेक जड़-चेतन इस पदार्थ वर्ग में ही आते हैं। प्रकाश किरणें, रेडियो किरणें, विद्युत् किरणें, ध्वनि किरणें अणु कंपनों सहित पदार्थजन्य क्रियाकलाप में गिनी जाती हैं। जो शून्य या रिक्त दिखाई पड़ता है, उस पोले भाग में वायु, ईथर

आदि आँख से न दीखने वाले पदार्थ भरे पड़े हैं। यहाँ खाली कुछ नहीं है। विज्ञान की पिछली मान्यता यही रही है।

पर अब विज्ञान ने एक और तत्त्व खोज निकाला है। पदार्थ का प्रतिद्वंद्वी जैसे क्रिया की प्रतिक्रिया होती है, ध्वनि की प्रतिध्वनि, इसी प्रकार पदार्थ का प्रतिद्वंद्वी एक प्रतिपदार्थ भी है, जो सामर्थ्य में कम नहीं वरन् अधिक ही बैठता है।

जब कैंब्रिज विश्वविद्यालय के गणित प्राध्यापक डिराक ने ब्रिटेन की रायल सोसायटी के सम्मुख अपना एक निबंध सुनाते हुए यह तथ्य प्रतिपादित किया, तो उस गोष्ठी में उपस्थित संसार भर के वैज्ञानिक अवाक् रह गये। डिराक ने क्वांटम भौतिकी, सापेक्षतावाद के सिद्धांतों पर अणु के प्रतिद्वंद्वी प्रतिअणु का प्रतिपादन जिन अकाट्य तथ्यों के आधार पर किया था, उसे झुठलाया भी नहीं जा सकता है। जिस प्रकार ईश्वर का प्रतिद्वंद्वी शैतान, धर्म का विरोधी पाप, देवता का प्रतिपक्षी असुर है, उसी प्रकार यह प्रतिअणु-प्रतिपदार्थ न केवल अपना अस्तित्व ही सिद्ध करता है, वरन् प्रतिपक्षी होने के कारण सामर्थ्यवान् भी अधिक बैठता है। कितने आश्चर्य की बात है, यह विश्व अपने साथ एक प्रतिविश्व भी सँजोए हुए हैं। पदार्थ के साथ-साथ प्रतिपदार्थ भी अपना काम कर रहा है।

बहुत दिनों से विज्ञान क्षेत्र में परमाणु को जानकारी थी। पीछे भी एक इकाई नहीं रहा। वरन् इलेक्ट्रॉन, प्रोटॉन, न्यूट्रॉन आदि का समूह माना गया। पीछे उसके भीतर और भी एलीमेंटरी पार्टिकल मेसान, न्यूट्रिनो आदि मिले। यह सभी अपने-अपने ढंग से गतिशील हैं, पर गति करने को तो जगह चाहिए खाली जगह न हो तो गति कहाँ और कैसे होगी ? यह खाली जगह ही प्रतिपदार्थ है।

यदि एक डिब्बे में खचाखच गोलियाँ भर दी जाएँ तो फिर न तो वह हिल-डुल सकेंगी और न गिनी जा सकेगी। इसी प्रकार यदि विश्व में अणु खचाखच भरे हों तो वे वैसी गति नहीं

कर सकते जैसी कि अब करते हैं; और न उनका अस्तित्व ही अनुभव किया जा सकेगा। गतिशील अणु और उसके साथ जुड़ा हुआ अवकाश दोनों के परस्पर संयोग-वियोग का जो क्रम निरंतर चलता है, उसी से शक्ति उत्पन्न होती है और चुंबकत्व भरी ऊर्जा का जो प्रवाह सर्वत्र दृष्टिगोचर होता है, वह उसी उद्‌गम से प्रादुर्भूत होता है। इसका जितना श्रेय अणु को है, उतना ही उसे गतिशील रहने का अवसर देने वाले प्रतिअणु को। दोनों में से एक का अस्तित्व यदि समाप्त हो जाए तो विश्व में फिर किसी प्रकार की कोई हलचल दिखाई न पड़ेगी। तब अणु गतिशील न रहकर स्थिर बने बैठे होंगे। इलेक्ट्रॉन के इस प्रतिद्वंद्वी को एंटी इलेक्ट्रॉन या पाजिट्रॉन कहते हैं।

डिराक के इस प्रतिपादन के आधार पर यह सोचा गया कि अणु के प्रत्येक अवयव का प्रतिद्वंद्वी हो सकता है। प्रकृति के प्रत्येक भौतिक पदार्थ का, तत्त्व का, प्रतिद्वंद्वी यह है तो फिर सचमुच ही पदार्थ की तुलना में एक उतना ही सशक्त प्रतिपदार्थ भी मानना पड़ेगा। इस शोध की वैज्ञानिकों ने जोर-शोर से खोज आरंभ की और आइरीन, फेडरिक, क्यूरी दंपत्ति, ने उसे एक वास्तविकता के रूप में पाया। एंडरसन ने ब्रह्मांड किरण संबंधी अपने अनुसंधान में इसी आधार पर सफलता प्राप्त की।

प्रतिपदार्थ कणों के बारे में एक बात ध्यान रखने योग्य है कि वे अकेले अपना अस्तित्व बनाए नहीं रह सकते, उत्पन्न होते हैं और अन्य कणों के साथ संयोग करके स्वयं विलुप्त हो जाते हैं। उनकी इस आँख मिचौनी के कारण ही विद्युत् चुंबकीय विकरण की ऊर्जा इस विश्व को प्रचुर मात्रा में उपलब्ध हो रही है। अब ब्रह्मांड का प्रतिद्वंद्वी प्रतिब्रह्मांड—एंटी युनिवर्स के संबंध में खोजें चल रही हैं। इस संदर्भ में यह जानकारी भी मिली है कि 'साइग्लेस' और 'विर्गो' नीहारिकाओं में पदार्थ और प्रतिपदार्थ के बीच युद्ध चल रहा

है। संभव है यह अपना ब्रह्मांड भी अपने प्रतिद्वंद्वी प्रतिब्रह्मांड के साथ संघर्ष में निरत हो।

अध्यात्म जगत् में दक्षिण मार्ग और वाममार्ग—योग और तंत्र की द्विविध परस्पर विरोधी आत्मबल उत्पादक साधना पद्धतियाँ प्रचलित हैं। दोनों ही विद्याएँ अपने-अपने स्थान पर महत्त्वपूर्ण हैं। तंत्र की प्रत्यक्ष शक्ति योग से अधिक है, इसलिए असुर वर्ग उसे अपनाता रहेगा। जहाँ तक शक्ति उत्पादन का संबंध है, वहाँ तक तंत्र अधिक क्षमता संपन्न और जल्दी परिणाम उत्पन्न करने वाला है, पर उसमें दोष एक ही है कि योग संबंधित सतोगुण का सर्वथा प्रतिकूल तमोगुण उत्पन्न होता है। पाप वृत्तियाँ भड़कती हैं और उपलब्धियों को असुर कर्मों में लगा देने का क्रम चल पड़ता है। इसीलिये विचारशील लोगों ने उसे विष मिश्रित मक्खन की तरह हेय ठहराया है।

परमात्मा और जीव को पदार्थ, प्रतिपदार्थ का युग्म कह सकते हैं। दोनों जब मिल जाते हैं तो परस्पर पूरक होते हैं। एक के अभाव की पूर्ति दूसरे से होती है और जीव अपने में स्वसंचालित शक्ति-प्रवाह का स्रोत उमड़ा देखता है; ऐसा स्रोत जो न तो कभी समाप्त होता है और न जिसकी क्षतिपूर्ति के लिये कुछ साधन जुटाने की आवश्यकता होती है।

सामान्यतया रयि और प्राण की एकांगी स्थिति की पूर्ति प्रतिपक्षी लिंग वाले जीव के सान्निध्य से पूरी होती है। पति-पत्नी मिलन से न केवल भावनात्मक अभाव और इंद्रियजन्य अतृप्ति तृप्त होती है, वरन् प्रजनन-प्रक्रिया से संबंधित वंश वृद्धि का क्रम भी चलता है। यह प्रचलन एकपक्षी पदार्थ क्रम है। शक्ति उत्पादन के लिए ईंधन चाहिए। इस ईंधन की पूर्ति नर के लिए मादा से और मादा के लिए नर से पूरी होती है। रयि को चेतना प्राण से और प्राण की तृप्ति रयि से होती है। प्रचलित स्थूल क्रम यही है।

अगले दिनों पदार्थ और प्रतिपदार्थ की परस्पर पूरक उपलब्धि एक ही शरीर से पूरी हो जाया करेगी। प्राचीनकाल में यह विज्ञान कुंडलिनी योग के नाम से प्रचलित था। उसमें एक ही शरीर में अवस्थित रयि और प्राण को उभारकर आत्मरति का उच्चस्तरीय आनंद लिया जाता है। इतना ही नहीं आत्मा और प्रतिआत्मा के संयोग से वे सभी उपलब्धियाँ मिल जाती हैं, जिन्हें ऋद्धि-सिद्धि के नाम से पुकारा जाता है। भारतीय आत्म विज्ञानी-चेतना विश्व में पदार्थ और प्रतिपदार्थ के आधार सिद्धांतों से न केवल परिचित ही रहे हैं, वरन् उनका प्रयोग भी करते रहे हैं। यदि इस संदर्भ में सुविस्तृत शोध की जाये तो भौतिक विज्ञान और आत्मिक विज्ञान के क्षेत्र में इतनी बड़ी उपलब्धियाँ हाथ लग सकती हैं, जिनके आधार पर मनुष्य को धरती का देवता कहा जा सकेगा।

❐ ❐

शक्ति का स्त्रोत पदार्थ से परे है

❋

ब्रह्मांड की रचना और विकास संबंधी डॉ० हापल की खोजों का आज सारे संसार में तहलका मचा हुआ है, किंतु हापल ही नहीं दूसरे वैज्ञानिकों का भी मत है कि संसार केवल भौतिक पदार्थों या प्रकृति की ही रचना है। उसके मूल में कोई ऐसी चेतन या विचारशील सत्ता नहीं है, जिसे हम ईश्वर, जीव या आत्मा कहें।

भारतीय तत्त्वदर्शन में इन शब्दों को वैज्ञानिक भी बनाकर रखा गया है, इसलिये चेतना की कल्पना असंदिग्ध नहीं है। कठोपनिषद के पदार्थ से भी सूक्ष्म सत्ता का ज्ञान कराते हुए उपनिषद्कार लिखता है—

इन्द्रियेभ्यः परा ह्यर्था अर्थेभ्यश्च परं मनः।
मनसस्तु परा बुद्धिर्बुद्धेरात्मा महानन्परः।।
महतः परमव्यक्तमव्यक्तात्पुरुषः परः।
पुरुषान्न परं किंचित् सा काष्ठा सा परागतिः।।

—१।३।१०, ११

अर्थात् इंद्रियों से सूक्ष्म उनके विषय और इंद्रियों के अर्थ से भी मन सूक्ष्म है। मन से बुद्धि और बुद्धि से भी आत्मा सूक्ष्म है, अव्यक्त अचिंत्य आत्मा से भी परे अर्थात् सूक्ष्म पुरुष है। पुरुष से परे कुछ भी नहीं है। वही अंतिम स्थान और परे से भी परे की गति है।

पैगिरहस्य ब्राह्मण में, शंकर ब्रह्मसूत्र, मानव धर्मशास्त्र तथा गीता में उसे अज और क्षेत्रज्ञ दो नामों से पुकारा है। वास्तव में ईश्वर की व्याख्या के लिए यही दो शब्द सर्वाधिक वैज्ञानिक हैं। प्रकृति का कार्य है ब्रह्मांड की रचना, यदि आत्म चेतना को प्रकृति का ही गुण मान लिया जाए तो फिर वैज्ञानिक प्रत्येक तारा में जीवन क्यों नहीं मानते ? फिर तो किसी भी रूप में

प्रत्येक पिंड में जीवन होना चाहिए, पर ऐसा अभी वैज्ञानिक उपकरणों के ज्ञान में नहीं आया है। यद्यपि वह प्रकृति के कण-कण में समाविष्ट है, पर वह दृश्य नहीं, क्षेत्रज्ञ है अर्थात् प्रत्येक क्षेत्र को अच्छी प्रकार जानने वाला है। **"आनदवातं स्वधया तदेकं"** (ऋग्वेद १०।१२६।२)—वह बिना प्राण-वायु के जीवित, प्रकृति से संयुक्त किंतु अद्वितीय है।

उपनिषदकारों की यह मान्यताएँ कपोल-कल्पित कर दी गई होती, वेद के ज्ञान को सचमुच ठुकरा दिया गया होता। यदि विज्ञान उस सूक्ष्मता के अध्ययन की ओर अग्रसर नहीं होता।

संसार के सभी पदार्थ मूलभूत दो प्रकार के कणों से बने हैं—

नाभिक कण (न्यूक्लिअस)—इसमें अब तक जो जानकारियाँ मिली हैं, वह प्रोटॉन जिसमें धन विद्युत् आवेश होता है और दूसरा कण न्यूट्रॉन है, जिसमें कोई चार्ज नहीं होता। इससे अधिक नाभिक की कोई जानकारी नहीं थी। यह उल्लेखनीय है कि प्रयोग के समय गणितीय निष्कर्ष सत्य निकलते हुए भी यह केवल परिकल्पनाएँ हैं, इन्हें आज तक किसी ने देखा नहीं। दूसरे नंबर के कणों को इलेक्ट्रॉन कहते हैं, जो विद्युत् के कण होते हैं और नाभिक के किनारे-किनारे चक्कर लगाते हैं।

सन् १६३० के एक दिन फ्रेंच वैज्ञानिक डॉ० पाल एंड्रियेन मारिस डीराक के मस्तिष्क में एक विचार आया कि क्या ऐसा भी हो सकता है कि नाभिक (न्यूक्लिअस) में पाये जाने वाले धनावेश द्रव्य के साथ ही ऋणावेश द्रव्य भी हो और इलेक्ट्रॉन के साथ कोई ऐसा भी इलेक्ट्रॉन हो, जो ऋण विद्युत् आवेश न होकर धनावेश हो ?

वास्तव में यह कल्पना नितांत गप्प लगती थी, इसलिए इस वैज्ञानिक ने अपना विचार किसी पर प्रकट नहीं किया; फिर भी उसके मस्तिष्क में उतनी वह काल्पनिक ध्वनि चुप न रह सकी।

वह निरंतर विचार करता रहा, तो एक दिन वही कल्पना सत्य सिद्ध हो गई और १६३३ में ही एक नया कण 'प्राजिट्रान' सामने आ गया; जो था तो इलेक्ट्रॉन, पर उसमें ऋण विद्युत् आवेश न होकर धन विद्युत् आवेश था, इसी पर मारिस डीराक को 'नोबुल पुरस्कार' भी मिला।

उसके बाद भी खोजें चलती रहीं। १६५५ में ओबेन चैंबरलेन तथा एमोलियो जे० सेग्रे ने 'प्रति-प्रोटॉन' की भी खोज कर ली। यह प्रतिप्रोटॉन है तो प्रोटॉन ही पर उसका उल्टा अर्थात् ऋणावेश कण है। इस खोज के साथ ही प्रकृति के साथ एक नये तत्त्व की खोज का क्रम चलता है, उसे प्रतिपदार्थ या एंटीऐलिमेंट कहते हैं। यह प्रतिपदार्थ कोई स्थूल द्रव्य न होकर वास्तव में वैसा दर्शन या अनुभूति मात्र है, जिसमें समय, गति और पदार्थ समासीन दिखाई देता है। वास्तव में यदि इस नए निष्कर्ष को क्षेत्रज्ञ के साथ तुलना करें, तो स्पष्ट हो जाता है कि ऐसी निराकार सत्ता की स्थिति अकाट्य है, जो स्वयं पदार्थ में होकर भी पदार्थ से परे-अद्वितीय है। इस जीव, आत्मा, विचार, ज्ञान, अनुभूति, मन बुद्धि इस तरह की कोई संज्ञा कह सकते हैं।

इससे भी महत् कल्पना तो प्रतिब्रह्मांड की है। अब वैज्ञानिक यह विश्वास करने लगे हैं कि ब्रह्मांड के निर्माण में, जिससे हम परिचित हैं, केवल वही द्रव्य या पदार्थ काम नहीं कर रहा, वरन् एक उसी के गुणों वाला किंतु उससे ठीक विपरीत एक और भी तत्त्व होना चाहिए, उसका नामकरण अभी से कर दिया है, पर उसकी जानकारी और खोज अभी तक अधूरी है। इसका मूल कारण परमाणुओं में प्रतिपरमाणु की उपस्थिति है। ऋण और धन आवेश पास-पास आते ही एक-दूसरे को रद्द कर देते हैं। उसी प्रकार यह दोनों प्रकार के तत्त्व होकर भी एक-दूसरे से विपरीत पड़ने के कारण परस्पर इस प्रकार आलिंगनबद्ध हो जाते हैं कि उन्हें अलग करना कठिन हो जाता है।

तुलसीदास ने भी यही लिखा है—

गिरा अरथ जल-बीचि सम, कहियत भिन्न न भिन्न।
बंदौ सीताराम पद जिन्हहिं परम प्रिय खिन्न।।

जो केवल दुःखियों के दुःख दूर करने में निरंतर रत हैं, उन प्रकृति और परमेश्वर को एक-दूसरे से अलग नहीं किया जा सकता। वे वाणी में भाव और जल में तरंग की भाँति इस तरह गुँथे हैं कि उन्हें अलग-अलग कदापि नहीं किया जा सकता।

जो वस्तु है, पर दिखाई नहीं देती, उसके अस्तित्व को कैसे स्वीकार किया जाए, किस प्रकार उसे देखा और उसकी अनुभूति की जाए—यह एक जटिल समस्या है। भारतीय तत्त्वदर्शन के आधार पर ऐसी योग पद्धतियाँ विकसित की गई हैं, जिनके अभ्यास से इन सूक्ष्म तत्त्वों की अनुभूति की जा सकती है। यम, नियम, आसन, प्राणायाम प्रत्याहार, धारणा, ध्यान समाधि आदि साधन ऐसे ही हैं, जिनसे आत्म चेतना के विभिन्न स्तरों का क्रमिक विकास होता है और अन्न या पदार्थों की क्रमशः सूक्ष्म होती अवस्था—रस, रक्त, मांस, अस्थि, वीर्य, मन, बुद्धि चित्त, अहंकार आदि का तात्त्विक ज्ञान होता चला जाता है, पर यह ऐसी कष्टसाध्य, समयसाध्य तथा श्रद्धा और विश्वासभूत प्रक्रियाएँ हैं, जिन पर आज का बुद्धिमान या पढ़ा-लिखा व्यक्ति सहज आस्था प्रकट नहीं कर सकता। तर्क की कसौटी पर यह मान्यतएँ सही नहीं उतरतीं। आज की प्रत्येक बात विज्ञान के तरीके से स्वीकार की जाती है। यद्यपि उपरोक्त तरीके आत्म-विकास के वैज्ञानिक प्रयोग ही हैं, पर उनका वैज्ञानिक विश्लेषण न हो पाने से ही तथाकथित तार्किक व्यक्ति संतुष्ट नहीं हो पाते, उन्हें ईश्वरीय उपस्थिति और आत्मकल्याण के सूत्र वैज्ञानिक ढंग से ही समझाये जा सकते हैं। अब विज्ञान इस स्थिति में आ भी गया है, जब भारतीय तत्त्व दर्शन को हल्का बनाकर, उन्हें भी इन सत्यों से परिचित कराया जा सके।

न्यूटन बगीचे में बैठा था। ऊपर पेड़ से एक सेव गिरा तो न्यूटन चकित हो गया। सामान्य व्यक्ति के लिए इसमें क्या आश्चर्य

हो सकता था, पर न्यूटन के मस्तिष्क में उसी बात ने एक भिन्न दिशा पकड़ी। उसने सोचा—यह सेव नीचे ही क्यों आया, आकाश में क्यों नहीं चला गया ? इस तर्क ने गुरुत्वाकर्षण सिद्धांत को जन्म दिया, जो आज तक विज्ञान-जगत् का एक विशिष्ट सिद्धांत माना जाता रहा है।

अब उसे सार्वभौमिक नियम बनाने में कठिनाई हो रही है। फ्रांस के वैज्ञानिक पाल काउडर्क ने अपनी पुस्तक 'ब्रह्मांड विस्तार' पेज १६६ (एक्सपैंशन आफ दि यूनिवर्स) में लिखा है कि तारा मंडल (गैलेक्सीज) का दूरगमन न्यूटन के सिद्धांत को तोड़ता है। गुरुत्वाकर्षण के अनुसार तो पदार्थ को सीमित होना चाहिए, वह फैलता क्यों है ? आइन्स्टीन का भी मत है कि 'न्यूटन का गुरुत्वाकर्षण कोई शक्ति नहीं, वरन् पार्थिव आकर्षण मात्र है'। वस्तुतः न्यूटन को श्रेय मिला वह तो हमारे भीष्म पितामह को मिलना चाहिए, जो आइन्स्टीन से अधिक समीप है। भूत-पदार्थों के गुणों का वर्णन करते हुए उन्होंने युधिष्ठिर से कहा—

भूमैः स्थैर्य गुरुत्वं च काठिन्यं प्रसवात्मता।
गंधो भारश्च शक्तिश्च संघातः स्थापना धृतिः।।

—महाभारत शा० प० २६१

हे युधिष्ठिर ! स्थिरता, गुरुत्वाकर्षण, कठोरता, उत्पादकता, गंध, भार, शक्ति, संघात, स्थापना आदि भूमि के गुण हैं।

यह गुण भूमि में ही नहीं, संसार के सभी पदार्थों में है कि वे अपनी तरह के पदार्थों को आकर्षित और प्रभावित करते हैं, भले ही वह दूरी कितनी ही क्यों न हो। इसका सबसे अच्छा विश्लेषण कई हजार वर्ष पूर्व महामुनि पातंजलि ने 'सादृश्य और आंतर्य' सिद्धांत से कर दिया था। गुरुत्वाकर्षण सादृश्य का ही उपखंड है। समान गुणों वाली वस्तुएँ परस्पर आकर्षित होती हैं। उससे आंतर्य पैदा होता है अर्थात् एक स्थान की वस्तुएँ दूसरे स्थानों की ओर गमन

करती रहती हैं। इसी से सृष्टि-विकास की प्रक्रिया निरंतर चल रही हैं—

'अचेतनेष्वपि, तद् यथा-लोष्ठ क्षिप्तो बाहुवेगं गत्वा नैव तिर्यग् गच्छति नोर्ध्वमारोहति पृथिवीविकारः पृथिवीमेव गच्छति-आन्तर्यतः। तथा या एता आन्तरिक्ष्यः सूक्ष्मा आपस्तासां विकारो धूमः। स आकाश देशे निवाते नैव तिर्यग् गच्छति नावागवरोहति। अविकारोऽपि एव गच्छतिआन्तर्यतः तथा ज्योतिषो विकारो अर्चिराकाशदेशो निवाते सुप्रज्वलितो नैव तिर्यग् गच्छति, नावागवरोहति। ज्योतिषो विकारो ज्योतिरेव गच्छति आन्तर्यतः। —१।१।५०

'चेतन-अचेतन सबमें आंतर्य सिद्धांत काम करता है। मिट्टी का ढेला आकाश में जितनी बाजुओं की ताकत से फेंका जाता है, वह उतना ऊपर चला जाता है, फिर न तो ऊपर जाता है न ही तिरछा जाता है, वह तो पृथ्वी का विकार होने के कारण पृथ्वी में ही आ गिरता है। इसी का नाम आंतर्य है। इसी प्रकार अंतरिक्ष में सूक्ष्म आपः (हाइड्रोजन) की तरह का सूक्ष्म जल तत्त्व ही उसका विकार धूम है। यदि पृथ्वी में धूम होता है तो वह पृथ्वी में क्यों नहीं आता ? वह आकाश में जहाँ हवा का प्रभाव नहीं, वहाँ चला जाता है—न तिरछे जाता है, न नीचे आता है। इसी प्रकार ज्योति का विकार "अर्चि" है, वह भी न नीचे आता है, न तिरछा जाता है। फिर वह कहाँ जाता है ? ज्योति का विकार ज्योति को ही जाता है।'

इस आंतर्य के सिद्धांत से शरीर के स्थूल और सूक्ष्म सभी तत्त्वों का विश्लेषण कर सकते हैं। इनमें सभी स्थूल द्रव्य आदि अपने-अपने क्षेत्र को चले जाते हैं, पर प्रत्येक क्षेत्र का अनुभव कराने वाला अर्चि कहाँ जाता है ? उसे भी आंतर्य के सिद्धांत से कहीं जाना चाहिए। उसका भी कोई ब्रह्मांड और ठिकाना होना चाहिए, जहाँ वह ठहर सके। जब इस प्रकार का ध्यान किया जाता है, तब एक ऐसी उपस्थिति का बोध होता है, जो समय, ब्रह्मांड और गति से भी परे होता है। वह कारण चेतना ही ब्रह्म है। योग का

उद्देश्य शरीरस्थ क्षेत्रज्ञ को उस कारण सत्ता में मिला देने का है। आंतर्य सिद्धांत ध्यान की इसी स्थिति को सिद्ध करता है। इसीलिये उसे प्रतिगुरुत्वाकर्षण कहा जा सकता है अर्थात् मन को अन्य सभी विकारों का परित्याग कर केवल चेतना को चेतना से ही, प्रकाश को प्रकाश से ही मिलाने का अभ्यास करना चाहिए। इसी से पदार्थ से परे, राग-द्वेष आदि पार्थिव-विकारों से परे उस शुद्ध-बुद्ध, निरंजन आत्मा और परमात्मा की अनुभूति की जा सकती है।

बात किसी भी ढंग से कही जाए, वैज्ञानिक ढंग से अथवा श्रद्धा-विश्वास और आस्तिक-आस्था के रूप में दोनों अंततः एक ही स्थान पर पहुँचते हैं। वेदांत कहता है कि परमात्मा प्रकृति से भिन्न गुणों वाला है और वैज्ञानिक कहते हैं कि सक्रिय और सूक्ष्म परमाणुओं का एक अलग ब्रह्मांड है। जहाँ पदार्थ नहीं, अपदार्थ शक्ति ही भरी है।

■ इंसान सर्वशक्तिमान की संतान

इस अपदार्थ शक्ति के कारण ही विभिन्न तत्त्वों में विभिन्न गुण और विशेषताएँ हैं। बहुत कम एक-दूसरे से सामंजस्य रखते हैं, जिनमें एक ही प्रकार के गुण हों ऐसे तत्त्वों की कुल संख्या अब तक मुश्किल से १०१ तक पहुँची है। किंतु विभिन्न परिमाण, ताप और वायु-दबाव आदि के साथ भिन्न-भिन्न तत्त्वों के मिश्रण से अब तक लगभग आठ लाख यौगिकों के निर्माण की पुष्टि हो चुकी है। यह विचित्र बात है कि तत्त्व परस्पर मिलकर एक ऐसी विलक्षण तीसरी रचना उत्पन्न कर देते हैं, जिनमें न माँ के गुण हों न बाप के फिर भी माँ-बाप विद्यमान दोनों ही रहते हैं।

उदाहरण के लिये हाइड्रोजन व ऑक्सीजन दोनों ही गैसें हैं। दोनों ही जलनशील हैं, किंतु जब यही दोनों मिलकर एक हो जाते हैं तो न केवल वे गैस से तरल स्थिति में आ जाते हैं, अपितु जलाने की अपेक्षा उसका गुण बुझाने का हो जाता है। इस स्थिति

में ज्वलनशीलता नष्ट नहीं होती, अपितु वह भीतर रहकर पोषण और शक्ति का आधार बन जाती है।

मनुष्य भी इसी तरह परमात्मा व प्रकृति, विचार सत्ता तथा पदार्थ सत्ता दोनों की समन्वित सत्ता है। देखने में उसमें न परमात्मा का-सा उच्च प्रकाश है। न गति ऊर्जा, सक्रियता और संवेदनशीलता न ही पूरी तरह जड़ता के गुण—इसी कारण उसे त्रैत् संज्ञा अर्थात् जीव नाम से संबोधित किया जाता है। दोनों ही शक्तियाँ हमारे अंदर हैं, हम चाहें तो परमात्मा तत्त्व को जाग्रत् कर महापुरुषों की श्रेणी में पहुँचने का सम्मान प्राप्त कर, लें या भौतिक गुरुता विकसित कर आर्थिक, औद्योगिक, स्वास्थ्य, खेलकूद, शिक्षा आदि किसी भी क्षेत्र में उल्लेखनीय प्रगति कर अपना भौतिक जीवन और भी सुखी समुन्नत बना लें। दोनों को संतुलित रखकर भी क्रमशः आत्मोन्नति की सीढ़ियाँ पार की जा सकती हैं। एक दिशा यह भी है कि अपनी तामसिक प्रवृत्तियों में ही पड़े रहकर कृमि-कीटकों का-सा परवर्ती और पीड़ित जीवन जिएँ। यह सब मनुष्य के अपने वश की बात है, वह कंचन बने या काँच।

प्रख्यात वैज्ञानिक सर जे० जे० टामसन ने हिसाब लगाकर बताया है कि यदि किसी एक परमाणु के भीतर जो शक्ति संगठित है वह बिखर जाय, तो क्षणांश में ही लंदन जैसे घने बसे तीन बड़े शहर राख हो जाएँ। यह विद्युदणुओं की शक्ति पर आधारित गणना थी। अब पता चला है कि इन विद्युदणुओं की मूल इकाई अति सूक्ष्म प्रकाशाणु है। उनकी शक्ति अनेक गुना अधिक है।

इन तथ्यों से पता चलता है कि हम मानसिक दुश्चिंताओं से, भौतिक आकांक्षाओं-लालसाओं से जितने हलके रहते हैं, उतने ही शक्तिशाली और श्रेष्ठ बनते हैं। हमारे भीतर एक शक्ति संपन्न राक्षस भी बैठा है—वह है अपना अहं—जब यह उग्र हो उठता है तो व्यक्तिगत जीवन में भयंकर कुंठाएँ, असम्मान तथा अमर्यादा के कारण घोर संघर्ष आ घेरता है, सामजिक जीवन में वही अशांति, अव्यवस्था उत्पन्न करता है तथा ऐसे उपद्रव खड़े करता है, जिससे

विनाशकारी दृश्य उपस्थित होते देखे जाते हैं, पर यदि प्रकाश की तरह हलके हों तो हमारा दृष्टिकोण प्रकाश की तरह व्यापक, निर्मल तथा गतिशील होता है। हमारा चिंतन अपने तक ही सीमित न रहकर प्राणी मात्र के हित की बात सोचने लगता है। यह स्थिति अपने आप में ही एक ऐसी आंतरिक स्फुरणा प्रदान करती है, जिसमें शांति, शीतलता, संतोष और प्रसन्नता की निर्झरणी अपने भीतर ही फूटती प्रतीत होती है।

आइन्स्टीन के "शक्ति सिद्धांत" के अनुसार एक परमाणु भार को यदि शक्ति में बदला जा सके तो उससे प्रकाश की गति × प्रकाशकी गति अर्थात्— १८६००० × १८६००० प्रति सैकंड = ३४५६६०००००० कैलोरी ताप उत्पन्न होगी। एक कैलोरी का अर्थ एक ग्राम पानी को एक सेंटीग्रेड ताप देने के बराबर होता है। उपरोक्त ताप का अर्थ हुआ कि एक परमाणु के भौतिक द्रव्य में ही इतनी गर्मी होती है कि उससे ३४५६ क्विंटल ६० किलो पानी को १०० सेंटीग्रेड तक खौलाया जा सकता है। १ पौंड पदार्थ की शक्ति उतनी होगी, जितनी १४ लाख टन कोयला जलाने से होगी। अभी तक वैज्ञानिक इस तरह का कोई संसाधन प्राप्त नहीं कर सके, जिससे पदार्थ को पूर्णतः शक्ति में बदला जा सके, तथापि यदि यह संभव हो सके तो एक पौंड पदार्थ की सूक्ष्म शक्ति से संपूर्ण अमेरिका को १ माह तक विद्युत् सप्लाई की जा सकती है। मन शरीर के भौतिक द्रव्यमान की विद्युत् इकाई या शक्ति-प्रवाह है। जितने परिमाण में मन को एकाग्र किया जाता है, उतने ही परिमाण में शरीर के भौतिक तत्त्व इस विद्युत् में बदलने लगते हैं। संपूर्ण एकाग्रता की शक्ति का अनुमान इसी बात से लगाया जा सकता है कि १२० पौंड वजन के शरीर से सारे अमेरिका को लगातार १० वर्ष तक विद्युत् सप्लाई जारी रखी जा सकती है।

हर व्यक्ति इस शक्ति का स्वामी है। यह तब है जबकि व्यक्ति अपने अंतर्निहित शक्ति-स्रोत को समझे एवं उसका ठीक तरह से प्रयोग विधि को जानें। अभी विज्ञान न तो पूरी तरह चेतन

(परमात्मा) और न प्रकृति को ही भली प्रकार समझ सका है; पूर्णता का तो अनुमान करना ही कठिन है। कल तक यह कहा जाता था—तत्त्व कुल ६२ हैं, आज उनकी संख्या १०३ तक पहुँच गई है। कल तक अणु के अंदर थोड़े-से परमाणुओं की खोज की जा सकी थी, किंतु आज यह संख्या २०० से अधिक हो गई है। अब इन कणों के भी प्रतिकण, प्रतिद्रव्य, प्रतिपदार्थ निकलते चले आ रहे हैं। तत्त्व सारिणी में अब तक यूरेनियम धातु सबसे भारी अर्थात् ६२ आणविक संख्या की पाई जाती थी, किंतु अब फ्लोरिडा (अमेरिका) के वैज्ञानिक डॉ० टी० ए० कैहिल तथा उनके सन्निकट सहयोगी डॉ० आर० वी० जैटरी ने उससे भी भारी तीन नये तत्त्वों की खोज कर ली है। इनके नामकरण तो नहीं हुए, पर इनकी आणविक संख्या के आधार पर इनका नाम ११६,१२४ तथा १२८ रख दिया गया है। यह तत्त्व अनुमानतः १ अरब वर्ष आयु के हैं।

इस तरह अत्यंत भार वाले तत्त्व भी, भले ही देर से ज्ञात हों—शक्ति के पुंज हैं और सृष्टि के आविर्भाव से ही विद्यमान सूक्ष्म तत्त्व भी। दोनों तत्त्व परस्पर गुंफित होने से जड़-पदार्थ तो दृश्य हो जाता है, चेतन अदृश्य रहता है। कारण यह है कि आत्यांतिक वेग के कारण भाररहित पदार्थ भी भारयुक्त हो जाता है। सूर्य से आने वाली किरणें सूक्ष्म हैं; किंतु आकार की तुलना में उनका भार बहुत अधिक है। सूर्य से धरती पर बरसती रहने वाली प्रकाश किरणों का भार यदि लिया जाए, तो प्रतिदिन हजारों टन तथा वर्ष भर में लाखों टन उनका भार निकले। प्रोफेसर ने तो उस भार का हिसाब भी लगाया है कि जो कण जितने ही सूक्ष्म हैं, उनका वेग उतना ही अधिक है। जिनका वेग जितना अधिक है, उनके आधार की तुलना में उनका भार उतना ही अधिक होगा।

न तो यह गति ही आधुनिकतम यंत्रों से नापी जा सकती है न भार, क्योंकि इन उपकरणों की एक सीमा है, जबकि यह तत्त्व असीम और अनंत हैं। इस रूप, इस श्रेणी में मन, भावानुभूतियाँ तथा संकल्प ही आते हैं। इसी बात को यह कह सकते हैं कि

परमात्मा ही अनादि, अनंत, अद्‌भुत, सर्वव्यापी और प्रकृति में घुला हुआ एक मात्र चेतन तत्त्व हैं। हमें उसे समझने का भी प्रयत्न करना चाहिए, मात्र दृश्य व भौतिक-पदार्थों की जड़ता में ही नहीं पड़े रहना चाहिए। प्रकाश में भार की तरह भौतिक-शक्तियाँ तो उस तत्त्व की अनिवार्य उपलब्धि हैं। खेती गेहूँ की होती हैं भूसा तो अपने आप मिलता है। हम अपनी आध्यात्मिकता सार्थक कर सकें, तो भौतिक अभाव आज जो कष्ट देते हैं, वे कल अनुचर अनुगामी बनकर भी पीछे-पीछे चल सकते हैं। दोषी न तो परमात्मा है न प्रकृति। दोनों तत्त्व हमारी रचना, पोषण और विकास में लगे हैं, पर अपनी दृष्टि में ही कुछ ऐसे दोष हैं कि हम स्वयं उस करुणा को हृदयंगम करने से वंचित रह जाते हैं। ऐसे समर्थ माता-पिता का पुत्र होकर मनुष्य दीन-हीन जीवन जिए यह खराब बात है। उसका मूल कारण अज्ञान ही है। यह अज्ञानता ही मिटाई जानी चाहिए।

हम देख सकें कि ऐसे प्रकाश-कणों की सघनता की एक सीमा है। जहाँ ये फोटॉन बहुत सघन रूप में हों तथा प्रचुर परिमाण में हों, वहाँ वे हमारे लिए अगोचर हो जाएँगे, अतः प्रचंड प्रकाश की स्थिति वहाँ होने पर भी मानवीय दृष्टि से वहाँ घोर अंधकार ही होगा। उस प्रचंड प्रकाश की तुलना में सूर्य का प्रकाश बहुत अधिक स्थूल है।

"तमसो मा ज्योतिर्गमय"—हमें अंधकार से प्रकाश की ओर ले चलो "तेजो वै तेजो महि देहि" दिव्य प्रकाश रूप परमेश्वर हमें प्रकाश दें—इन प्रार्थनाओं में परमात्म को उसी तरह के सूक्ष्म और सर्वव्यापी प्रकाश के रूप में अस्तित्व में सिद्ध किया है। वैज्ञानिक और वेदांत दोनों का एक ही निष्कर्ष है कि हमें दिखाई देने वाला प्रकाश तो स्थूल है। सूक्ष्म तत्त्व स्थूल आँखों से दर्शनीय न होने पर भी हमें चारों ओर से आच्छादित किये रहते हैं। उन्हें अनुभव करने के लिए ज्ञान की आत्म-ज्योति जागृत करने वाली साधनाओं की आवश्यकता होती है। अतएव उपासना और स्वाध्याय हमारे जीवन की अत्यंत महत्त्वपूर्ण अपेक्षाएँ हैं, इनके बिना विवेक जाग्रत् ही नहीं होता। स्थूल-पदार्थों को ही देखते और उन्हीं में उलझे रहते हैं,

सूक्ष्म तत्त्वों की अनुभूति के लिए हमारी उस तरह की तैयारी भी होनी चाहिए। हमारी पहुँच मन को नियंत्रित रखने और उसे यथार्थ लक्ष्य की ओर नियोजित रखने की स्थिरता भी चाहिए।

मन विचार और भावनाओं की सत्ता सर्वसमर्थ है। यह न तो काल्पनिक है न ही ऐसे कि उन तक पहुँच न हो महान् वैज्ञानिक आइन्स्टीन की मान्यता यह थी कि संसार में प्रकाश ही सर्वोपरि वेग वाला तत्त्व है; किंतु अमेरिका के ही एक अन्य वैज्ञानिक डॉ० गेरार्ड फीनबर्ग ने ऐसे द्रव्याणुओं की कल्पना का समर्थन किया है, जिनकी गति प्रकाश के कणों से भी बहुत अधिक है। अमेरिका की टैक्सास यूनिवर्सिटी में कार्यरत भारतीय वैज्ञानिक डॉ० ई० सी० जी० सुदर्शन ने तो यह बात और आधारभूत तथ्यों को व्यक्त करके सिद्ध कर दी है।

■ एक नये अस्तित्व का आभास

पिछले दिनों विज्ञान ने एक नयी और अद्‌भुत खोज की है। पदार्थ की सत्ता बहुत समय से ज्ञात है। उसी के उपयोग से मनुष्य साधन संपन्न और प्रगतिशील बन सका है। अब प्रतिपदार्थ की सत्ता सामने आयी है और उसके बारे में कहा गया है कि वह पदार्थ की तुलना में कम शक्तिशाली नहीं है। यदि उसका उपयोग कर सकना भी मनुष्य की क्षमता के अंतर्गत आ जाए तो पदार्थ में हलचल पैदा करके जो शक्ति उत्पन्न की जाती है, वह प्रकृति के स्वसंचालित प्रतिपक्ष के आधार पर सहज ही बिना श्रम के हस्तगत हो जाएगी और तब मनुष्य को सर्वशक्तिमान कहला सकने का गौरव प्राप्त हो सकेगा और विश्व का आधार उपलब्ध कर सकेगा। तब मानव से ठीक विरोधी दानव तत्त्व का अस्तित्व और भी अधिक स्पष्टतापूर्वक देखा-समझा जा सकेगा।

उपलब्धियों की दिशा में बढ़ते हुए हमारे चरण अपने साथ यह उत्तरदायित्व भी जोड़े हुए हैं कि उपार्जन का उपयोग उच्छृंखल

रूप से नहीं वरन् मर्यादित क्रम से किया जाय। ऐसा न हो सका तो विभूतियों का परिणाम विघातक ही होगा।

प्रतिअणु, प्रतिपदार्थ, प्रतिविश्व और यहाँ तक कि प्रतिमानव और प्रतिभगवान् के अस्तित्व को भविष्य में प्रत्यक्ष किया जा सकता है और करतलगत भी। इन उपलब्धियों से गर्वोन्नत और अनंत सामर्थ्य संपन्न बना जा सकता है। पर मूल प्रश्न की जटिलता बढ़ती ही जाती है कि इन उपलब्धियों का सदुपयोग हो सकेगा या नहीं। यदि उद्धत उच्छृंखलता ही बरती जाती रही तो हम प्रतिमानव—असुर के रूप में ही विकसित होंगे।

केंब्रिज विश्वविद्यालय के प्राध्यापक डिराक ने इंगलैंड की रायल सोसायटी के सामने एक शोध प्रबंध प्रस्तुत किया कि भौतिक जगत् में पदार्थ की ही भाँति प्रतिपदार्थ का भी अस्तित्व मौजूद है। डिराक ने आइन्स्टीन की सापेक्षता और क्वांटम की भौतिकी का हवाला देते हुए सिद्ध करने का प्रयत्न किया कि क्रिया की प्रतिक्रिया जिस तरह होती है, उसी तरह पदार्थ का प्रतिद्वंद्वी प्रतिपदार्थ भी होता है।

उस समय उस प्रतिपादन को आश्चर्यचकित करने वाला मात्र कहा गया था, पर पीछे उस संदर्भ में शोध-कार्य निरंतर चलता रहा, तो इस निष्कर्ष पर पहुँचना पड़ा कि वस्तुतः इस प्रकार की शक्ति इस जगत् में मौजूद है और क्षमता की संभावना अब तक के उपलब्ध शक्ति स्रोतों की तुलना में कम नहीं वरन् अधिक है।

परमाणु के संबंध में कभी ऐसा माना जाता था। वह विभक्त न हो सकने वाली इकाई है, पर पीछे वह मान्यता गलत निकली और परमाणु के भीतर इलेक्ट्रॉन, प्रोटॉन, न्यूट्रॉन आदि सूक्ष्म कण पाये गये। इनसे भी सूक्ष्म मेसान, न्यूट्रिनों आदि विभाजनों का पता चल गया है। सौरमंडल की तरह परमाणु की संरचना पाई गई है, उसका मध्य केंद्र नाभिक—न्यूक्लियस कहलाता है। वह प्रोटॉन और न्यूट्रॉन से मिलकर बनता है। मेसान कण इन्हें नाभिक के साथ मजबूती से

बाँधे रहते हैं। इसके अतिरिक्त न्यूट्रिनों नामक एक मात्राविहीन अत्यंत रहस्यमय कण नाभिक में विद्यमान रहता है।

एक डिब्बे में गोलियाँ ठूँस-ठूँस कर खचाखच भर दी जाएँ तो उनके पृथक् अस्तित्व को देखना या गिनना हमारे लिए संभव न हो सकेगा। कुछ गोलियाँ उनमें से निकाल ली जाएँ तो बीच में थोड़ी पोल बन जाने के बाद ही उनकी संख्या तथा आकृति समझ सकना संभव होगा। परमाणु के अंतः क्षेत्र में इसी प्रकार की पोल रहती है, उसी के कारण उसके विविध अवयवों का अस्तित्व दृष्टिगोचर एवं गतिशील रहता है।

डिब्बे की गोलियों की पोल को सर्वथा शून्य नहीं माना गया है। परमाणु के भीतर की पोल भी कम क्षमता संपन्न नहीं होती। विज्ञान ने पदार्थ की तरह उसके इर्द-गिर्द रहने वाले शून्य भाग को कम शक्तिशाली नहीं माना है, वरन् उसमें ऊर्जा का एक अतिरिक्त प्रवाह देखा है।

परमाणु के अंतःमंडल की पोल को डिराक ने छिद्र होल—शब्द से संबोधित किया है और उन छिद्रों में विद्युत् का धन आवेश भरा पाया है, जबकि ठोस कणों में ऋण विद्युत् आवेश रहा करता है। उसने इन छिद्रों में भरी शक्ति को एंटी इलेक्ट्रॉन अथवा पाजिट्रॉन का नाम दिया है। पाजिट्रॉन का अस्तित्व देर तक नहीं रहता। उस रिक्तता को भरने के लिए समीपवर्ती कण दौड़ पड़ते हैं। फलतः इलेक्ट्रॉन और पाजिट्रॉन के आपसी सम्मिश्रण की क्रिया संपन्न होती है, जिसे ध्वंस अथवा विलोपन कहते हैं। इसी विलोपन के कारण फोटान के रूप में अधिक शक्तिशाली ऊर्जा उत्पन्न होती है। इन फोटानों को विद्युत् चुंबकीय विकरण समझा जा सकता है।

पदार्थ की "प्रति" पक्ष की शोध अब बहुत आगे बढ़ गई है और प्रतिइलेक्ट्रॉन, प्रतिप्रोटॉन, प्रतिन्यूट्रॉन, का अस्तित्व प्रकाश में आया है। पदार्थ के प्रतिद्वंद्वी प्रतिपदार्थ की अब कोई कल्पना नहीं रही, वरन् उसे सुनिश्चित तथ्य के रूप में स्वीकार किया गया है। अब ब्रह्मांड का प्रतिद्वंद्वी प्रतिब्रह्मांड भी शोधकर्ताओं के लिए गंभीर

दिलचस्पी का विषय बन गया है। एंटी मैटर, एंटी पार्टीकल और एंटी युनिवर्स के संबंध में जो कल्पनाएँ और संभावनाएँ सामने हैं, उनसे प्रतीत होता है कि भगवान् के समतुल्य शैतान की सत्ता भी अब सत्य एवं प्रत्यक्ष होने जा रही है।

ब्रह्मांड में प्रतिपदार्थ का अस्तित्व है, इतना ही नहीं, वह अपने उग्र क्रियाकलाप में भी संलग्न है। ऐसा आभास अंतरिक्ष विज्ञानियों को मिला है। साइग्रेस और विर्गो नीहारिकाओं से जो संदेश धरती पर आ रहे हैं, उनसे प्रतीत होता है कि उस क्षेत्र में पदार्थ और प्रतिपदार्थ के बीच देवासुर संग्राम जैसा अत्यंत रोमांचकारी मल्ल युद्ध हो रहा है। प्रो० राटजेन द्वारा आविष्कृत एक्सरे, हेनरी बेकरल कृत प्राकृतिक रेडियोधर्मिता, जसर टामसन द्वारा प्रतिपादित इलेक्ट्रॉन तथ्य, अलवर्ट आइन्स्टाइन द्वारा शोधित सापेक्षिता, अर्नेस्ट रैदर फोर्ड द्वारा सौरमंडल और परमाणु का समीकरण, नील्स बोर का हाइड्रोजन का हलकापन किसी समय बहुत आश्चर्य और चर्चा के विषय थे। इन दिनों प्रतिपदार्थ की सत्ता के संबंध में उससे भी अधिक ऊहापोह किया जा रहा है।

प्रतिपदार्थ में तथ्य, तथ्य और कारण पर्याप्त मात्रा में जुटते जा रहे हैं। यदि इलेक्ट्रॉन ऋण के स्वतंत्र आवेश हैं, तो धन विद्युत् के स्वतंत्र आवेश ग्रस्त इलेक्ट्रॉन क्यों नहीं हो सकते ? यदि पदार्थ की मूल इकाई न्यूट्रॉन एक धनावेश ग्रहण करके प्रोटॉन बन सकता है तो ऋणावेश ग्रहण करके ऋणावेशित प्रोट्रान क्यों नहीं बन सकता ? इन तर्कों के आधार पर प्रतिपदार्थ का अस्तित्व अब असंदिग्ध बनता जा रहा है।

ओवेन चेंबरलेन और एमीलिओ जी सिग्नेने कुछ त्रुटिपूर्ण प्रतिप्रोटॉन बनाकर दिखा भी दिये हैं। अंतर इतना ही रहा है कि वे धनावेशित न होकर ऋणावेशित बन पाये।

कोलंबिया विश्वविद्यालय के वैज्ञानिकों ने सामान्य हाइड्रोजन से ठीक विपरीत 'प्रतिड्यूटिकियम' की खोज की है। उसका निर्माण प्रतिप्रोटॉन और प्रतिन्यूट्रॉन को मिलाकर किया गया है। इस निर्माण

के अग्रणी डॉ० सैम्युडालटिंग और डॉ० लियन एम० लेडर मैन का कथन है, इस खोज से आगे एक कदम आगे बढ़ने की गुंजायश है। प्रतिहाइड्रोजन से परे प्रतिद्रव्य भी संभावित है।

अब प्रतिहीलियम से लेकर प्रतियूरेनियम तक की संभावना भी उज्ज्वल होती जा रही है और खोजे गये रासायनिक तत्त्वों से विपरीत प्रकार के तत्त्वों का अस्तित्व सामने आने के संबंध में भी विज्ञानी आशान्वित हैं। इस आधार पर प्रतिद्रव्य ही नहीं प्रतिब्रह्मांड को भी किसी दिन मानव अपने करतलगत कर लेगा। ऐसा सोचना अब एक उत्साह मात्र न रहकर अधिक ठोस तथ्य बनता जा रहा है।

इस संदर्भ में एक बड़ी कठिनाई यह अड़ी हुई है कि यदि ये प्रतिस्पर्धी घटक साथ-साथ रखे जाएँ, तो वे एक-दूसरे को निरस्त कर देते हैं। इसलिए आशंका है कि दोनों किसी भी क्षेत्र में साथ-साथ नहीं रह सकेंगे। जहाँ एक रहेगा—वहाँ से दूसरा मुख मोड़कर चल देगा। कणों के साथ प्रतिकणों का ताल-मेल न बैठ सका तो फिर पदार्थ के क्षेत्र में प्रतिपदार्थ का अस्तित्व प्रयोगशालाओं तक सीमित रह जायेगा और दोनों की सत्ता से लाभान्वित हो सकना मनुष्य के लिए संभव न हो सकेगा।

इतना होते हुए भी अमेरिका की ब्रूक हेवेन प्रयोगशाला के अन्वेषी इस संभावना के प्रति बहुत ही उत्साही हैं कि पदार्थ का प्रतिपक्ष आधुनिक भौतिकी अत्यंत क्रांतिकारी संभावनाएँ प्रदान करेगा।

भगवान् और शैतान की, देवता और असुर की, पुण्य और पाप की, बंधन और मुक्ति की प्रतिपक्षी सत्ताओं की परिचय प्रतिपादन चिरकाल से तत्त्वदर्शी मनीषियों द्वारा प्रस्तुत किया जाता रहा है। पदार्थ से प्रतिपक्षी प्रतिपदार्थ का अस्तित्व भी कुछ अनहोनी या असंभव बात नहीं है।

शक्ति के स्रोत जितने हाथ लग चुके हैं, उससे यह आशा बँधी है कि अभी प्रकृति के अंतराल में जो पाया जा चुका है, उसकी तुलना में जो अविज्ञात एवं अनुपलब्ध है, वह असंख्य गुना अधिक है। मानवी प्रयासों में वह संभावनाएँ भी मौजूद हैं, जिसके

आधार पर जो प्राप्त करने को रह गया है, उसे प्राप्त किया जा सकेगा। ऐसा ही भावी उपलब्धि संभावनाओं की कड़ी में प्रतिपदार्थ को भी एक और चमत्कारी सिद्ध गिना जा सकता है। प्रतिविश्व की खोजकर हम दृश्यमान संसार से ठीक विपरीत के एक नए प्रति विश्व की आग में उन सबको जलाकर खाक कर देंगे, जो लाखों वर्षों के सौम्यक्रम को अपनाकर प्राप्त किया जा सका है।

क्रिया की प्रतिक्रिया और ध्वनि की प्रतिध्वनि के उदाहरण हम पग-पग पर देखते हैं। दीवार पर फेंककर मारी गई गेंद, फेंक गये स्थान की ओर वापस लौटती है। गुंबज में जोर से बोले हुए शब्द प्रतिध्वनित होकर गूँजते हैं। क्रोधकारी कटुता का उत्तर उसी स्तर के विरोध प्रतिशोध में मिलता है और सज्जनता लौटकर दूसरों के सद्व्यवहार के रूप में अपने पास ही वापस लौट आती है। दिन के बाद रात, सर्दी के बाद गर्मी जैसे घटनाक्रमों को जन्म के साथ मरण को जुड़ा देखते हुए इस सहज निष्कर्ष पर पहुँचा जा सकता है कि इस संसार में क्रिया की प्रतिक्रिया का क्रम बहुत ही सुव्यवस्थित रीति से चल रहा है। पैंडुलम की तरह यहाँ सब कुछ दिशा और विदिशा के स्तर पर आगे-पीछे चलकर सृष्टि संचालक की व्यवस्था में योगदान देने में संलग्न है। शरीर के अंतर्गत श्वास-प्रश्वास, आकुंचन-प्रकुंचन रक्ताभिषरण, निद्रा-जागरण, ग्रहण—विसर्जन के रूप में यही सब हो रहा है। नर-नारी के विरोधी किंतु पूरक अस्तित्व ने ही प्राणधारियों की वंश परंपरा को गतिशील रखा है।

आगे बढ़ने और बहुत कुछ प्राप्त करने की तत्परता और तन्मयता को जितना सराहा जाय, उतना ही कम है, पर उसका पूरक तत्त्व भी विस्तृत नहीं किया जाना चाहिए। शक्ति-संपन्नता के साथ उत्तरदायित्व के निर्वाह को भी उतनी सावधानी के साथ सम्हाला जाना चाहिए अन्यथा अवांछनीय प्रयोग में लगी हुई समर्थता जड़-मूल को ही नष्ट करती है। प्रतिमानव यदि उभर पड़ा तो फिर न व्यवस्था बनेगी और न शांति। हमें इस उद्धत प्रगति के साथ-साथ अपना और अपनी सभ्यता का ही अंत करना पड़ेगा।

❐ ❐

प्रकृति उपयोग्य ही नहीं, उपास्य भी

*

सन् १८५७ भारतवर्ष में प्रथम स्वातंत्र्य संग्राम (गदर) के नाम से विख्यात है, यही वर्ष कैलीफोर्निया की नापाकाउंटी स्टेट में एक ऐसे आश्चर्य के लिए विख्यात है, जिसने देववाद की यथार्थता का एक अद्‌भुत उदाहरण प्रस्तुत कर लाखों लोगों को विस्मित कर दिया।

२७ अगस्त। कई दिन से बादल घुमड़ रहे थे, पर वर्षा नहीं हो रही थी और तब एकाएक बूँदें गिरनी प्रारंभ हुईं। वर्षा से बचाव के लिए लोग जल्दी-जल्दी घरों में छिपने लगे, तो भी कुछ लोग जो बाहर जंगल में काम कर रहे थे, वे जल्दी ही घर नहीं पहुँच सके; घर तो पहुँचे पर देर से भीगते हुए पहुँचे।

बरसात का पानी सिर से पाँव तक बह रहा था। कुछ बूँदें एक चरवाहे के ओठों पर लगीं पानी क्या था पूरा शर्बत अब उसने अपनी हथेली आगे कर दी और पूरा चुल्लू पानी इकट्‌ठा कर पिया, तो वह आश्चर्य में डूब गया, क्योंकि वह पानी नहीं वास्तव में शर्बत था। ठीक वैसा ही जैसा कि चीनी घोलकर शर्बत बनाया जाता है।

एक चरवाहे को ही नहीं, कई किसानों, कुछ अध्यापकों और शहर के अनेक लोगों को भी एक साथ ही अनुभव हुआ कि आज जो पानी बरस रहा है। वह सामान्य वर्षा से बिल्कुल भिन्न है अर्थात् पूरे नापाकाउंटी क्षेत्र में बरसे जल में भरी-पूरी मिठास थी। ऐसा नहीं कोई हलका मीठापन रहा हो।

बात की बात में चर्चा सारे क्षेत्र में फैल गई। जो यहाँ था उसने वहीं वर्षा का जल पीया और पाया कि उस दिन की बरसात में मिश्री घुली हुई थी।

पुराणों में ऐसी कथाएँ बहुतायत से पढ़ने को मिलती हैं, जिनमें यह बताया गया होता है किसी देवता ने किसी भूखे-प्यासे व्यक्ति को आकाश से भोजन भेजा, सवारी भेजी, वाहन भेजे,

सहायताएँ प्रस्तुत कीं। भूखे-प्यासे को देवराज इंद्र ने अन्न-जल दिया था। अश्वनी कुमार आकाश मार्ग से दिव्य औषधि लेकर च्यवन ऋषि के पास आये थे और उन्हें अच्छा किया था। ग्राह से गज की रक्षा के लिए सुदर्शन चक्र भगवान की अदृश्य सहायता के रूप में उतरा था। भगवान् राम को 'विरथ' देख इंद्र ने अपना रथ भेजा था। द्रोपदी की सहायतार्थ कृष्ण भगवान् ने उनकी साड़ी की योजनों लंबा कर दिया था। बाईबिल में ऐसे वर्णन आते हैं, जब महाप्रभु ईसा को देवताओं ने देव भोग भेजे थे। इन कथाओं में बहुत-सा अंध-विश्वास भी हो सकता है, पर विज्ञान और तथ्य भी कम नहीं हो सकता। प्रस्तुत घटना इस बात का प्रमाण है कि विशाल ब्रह्मांड में ऐसी शक्तियों का अस्तित्व असंभव नहीं, जो पदार्थ के परमाणुओं को अदृश्य सहायता के रूप में प्रकट कर देने की क्षमता न रखती हों। योग सिद्धियों का मूल-सिद्धांत भी यही है कि जो कुछ व्यक्त है, दृश्य है वह सब सूक्ष्म अव्यक्त से एक क्रम व्यवस्था द्वारा उभर रहा है। संकल्प सत्ता में वह शक्ति है, जो उस क्रमिक नियम को भी बदल सकती है और उसके स्थान पर आश्चर्य-अजूबे प्रस्तुत कर सकती है।

यह घटना उसी का प्रमाण थी। कई दिन लोगों ने बरसात के स्टोर किये जल का शर्बत के रूप में प्रयोग किया। नापाकाउंटी के वैज्ञानिकों ने उस जल के परीक्षण किए। कई लोगों ने घरों में जल को सुखाया और उसमें घुली हुई मिश्री को अलग किया। बरसात के साथ घुली हुई इस मिश्री की जब स्टोरों में जमा मिश्री के साथ रासायनिक तुलना की गई तो पाया गया कि दोनों के कण एक ही तरह के हैं, मिठास, एक ही तरह का है।

बरसात में यह मिश्री कहाँ से आई वैज्ञानिक इस बात का आज तक कोई उत्तर नहीं दे सके; जबकि वे इस बात को मानते हैं कि गन्ने के रूप में खेतों से मिलने वाली शक्कर के कण मिट्टी में नहीं आकाश में ही है।

कुछ समय पूर्व फ्रांस के क्लरमांट में भी ऐसी वर्षा हुई, जिसे आज भी लोग लाल वर्षा या रक्त वर्षा के नाम से याद करते हैं। इस वर्षा में जो जल वर्षा वह लाल रक्त के समान था। वैज्ञानिक आज तक उसका रहस्योद्घाटन नहीं कर पाए कि उसका कारण क्या था, किसी-किसी का कहना था सहारा रेगिस्तान में लाल पत्थरों के महीन कण हवा से उड़ते हैं, वह कण ही भाप के साथ मिल गये होंगे, उसी से वर्षा हुई। इस निष्कर्ष से लोग संतुष्ट नहीं हुए तथापि पदार्थ विज्ञान के अनुसार कोई न कोई दूरवर्ती कारण तो है ही जिसके कारण यह घटना घटी।

■ प्रकृति की जबर्दस्त सामर्थ्य

जाने वह कौन-सी अभिशापित घड़ी थी, जब मनुष्य की बुद्धि ने यह मान लिया कि प्रकृति जड़ है, उसे चाहे जब जिलाने और चाहे जब सर्वनाश कर डालने का अधिकार है। सेवा, सद्भावना, परिपोषण के रूप में प्रकृति को दिये गये अनुदान किस तरह प्रतिफलित होते हैं, यह किसी को देखना हो तो बानमुड़ा के राल्फ सेंडर का इतिहास पढ़कर देख लें, जिसने केवल मात्र पौधों के प्रति असीम प्यार और दुनिया भर के फल-फूल एकत्र करने-रोपने की कठिन साधना से भौतिक समृद्धि का शिखर पार कर लिया, पर यदि उसके साथ दुर्भावना व्यक्त की जाये तो प्रकृति में इतनी जबर्दस्त सामर्थ्य है कि मनुष्य को परास्त करके ही छोड़ देती है; फिर उसे अपने आप में चाहे जितना शक्तिशाली और सामर्थ्य होने का ही अभिमान क्यों न हो।

बात अमेरिका के एक छोटे-से नगर की है। कोरेफोर्ड नामक व्यक्ति के घर के साथ लगा हुआ एक सुंदर बगीचा था। बगीचे की देख-रेख के लिए उनके पिता ने टोनी नामक एक माली नियुक्त रखा। टोनी उस बगीचे की पूरी तरह देखभाल नहीं करता था तो भी चीकू, अमरूद, आम, नासपातियाँ सभी फल देते थे, तब आज की तरह रासायनिक खादों का प्रचलन नहीं हुआ था, गोबर की

साधारण खाद और थोड़े-बहुत पानी से ही बाग में लगाई जाने वाली सब्जियाँ उतनी सब्जी देती थीं, जिससे पूरा परिवार भरपेट सब्जी खाता था, फल-फूल मित्रों और संबंधियों में भी बाँटते थे। सब ओर बड़ी प्रसन्नता बिखेर रखी थी, थोड़ी-सी मिट्टी के इन थोड़े-से पौधों ने।

दरवाजे के सहन पर उन्हीं दिनों एक पौधा उग आया। यह पौधा मिश्र जाति का था, उससे घर की शोभा निखर उठती थी, दरवाजे पर सघन छाया के अतिरिक्त, उसमें नन्हें-नन्हें पक्षी बैठकर प्रातः सायं चहचहाते, तो वहाँ प्राकृतिक संगीत का आनंद प्रवाहित होने लगता। बसंत ऋतु में उसमें फूल लद जाते तो उसके आकर्षण से मधुमक्खियाँ, तितलियाँ दूर-दूर से दौड़े चली आयीं।

विजातीय था तो क्या हुआ ? अपनी संतान न थी तो क्या हुआ ? आखिरकार था तो वह भी प्रकृति का ही एक नन्हा शिशु-छोटा-सा घटक। घर वालों ने उस पौधे को निरर्थक त्रास देना प्रारंभ कर दिया। यह कैसी विडंबना है कि लोग अपनों से जिनसे फल की आशा हो, उनके साथ अत्यधिक मोह दर्शाए और विरानों से वे समाज शरीर का ही अंग और अंश होते हुए भी, उपेक्षा अनादर और अविश्वास बरतें ? कोरेफोर्ड ने रीडर्स डाइजेस्ट के १९६० के एक अंक में अपनी भूल स्वीकारते हुए लिखा है कि हम लोग पहले तो उसकी छील-छाल कर अपने नाम लिखा करते, पीछे उनमें सैकड़ों कीलें ठोक दीं। उसकी डालों में बाँधकर पटाखे छुड़ाए पर उस पौधे की मस्ती में रत्ती भर अंतर नहीं आया, वह अपनी स्वाभाविक गति से वैसे ही विकसित होता चला गया, जिस तरह मनस्वी व्यक्ति कठिनाई बाधाओं प्रतिरोधों की भी परवाह न करते हुए प्रगति पथ पर निरंतर आगे बढ़ते रहते हैं।

अन्याय की सीमा यहीं तक नहीं रही इन लोगों ने उसके नीचे आग जलाना, खाना पकाना, भी प्रारंभ कर दिया, जिससे पक्षीगण वहाँ से भाग गये। आत्मीयता की भावना से ओत-प्रोत वृक्ष

ने अपनी डालें बढ़ाकर उनके आँगन में भी छाया कर दी तो उन लोगों ने न केवल डालें ही छाँट दी, अपितु उसे जड़ से सुखा डालने की गरज से उसकी तमाम सारी जड़ें भी काट डालीं। जिस तरह संत और सज्जन गाली देने वाले के प्रति भी विनम्र हितैषी और मृदुभाषी बने रहते हैं, उसी तरह उस वृक्ष ने इतनी व्यथा सहकर भी अपनी प्रवृत्ति रोकी नहीं। उसे न जाने किस शक्ति का बल था जो निरंतर बढ़ता ही रहा।

इस बीच विलक्षण दुर्घटना घटी, अब तक जो वृक्ष वनस्पति पेड़-पौधे, इस परिवार के प्रति आत्मीयता उदारता और सहयोग का भाव रखते थे, अपने एक सजातीय के प्रति दुर्व्यवहार देखकर क्रुद्ध हो उठे अर्थात् उन सबने असहयोग प्रारंभ कर दिया। चीकू के पौधे कुम्हलाकर सूख गये, अंगूर की बेलों ने फल देना बंद कर दिया, अमरूदों में कीड़े पड़ने लगे और सब्जियों तक ने फल देने से इनकार कर दिया। लान में लगी दूब ने अपने भाइयों का साथ दिया, वह भी पीली पड़ गई।

फोर्ड परिवार को बड़ी चिंता हुई, उसने समझा कि पोषक तत्त्वों के अभाव में ऐसा हो रहा होगा अतएव मिट्टी की जाँच कराई गई, बोतलों में से नया प्लाज्मा तत्त्व संग्रहीत किया गया, कीटनाशक छिड़के गये, अच्छी बढ़िया खाद दी गई तो भी परिणाम शून्य रहा। न केवल वनस्पतिशास्त्री, अपितु रसायनज्ञों, फिजीशियनों तक की सहायता ली गई, उन्होंने जो भी उपाय सुझाये सब प्रयोग में लाये गये किंतु समस्या अपने स्थान से टस से मस नहीं हुई।

कोरेफोर्ड ने उस समय की अपनी व्यथा करते हुए लिखा है—उस समय मैं बगीचे में जाता तो मुझे हर पौधा नाराज और बीमार प्रतीत होता, यहाँ तक कि झड़ियाँ जो मेरे लिए निरर्थक थीं, वह तक अप्रसन्न दीखतीं। शायद यह किसी विषाणु (वायरस) के कारण हो, उसकी भी जाँच कराई गयी, पर रोग शरीर में नहीं प्रकृति के मन में ही लगता था अन्यथा वैज्ञानिकों के इतने प्रयत्नों

का कोई तो प्रतिफल निकलता। प्रकृति के सम्मुख पराजय का इतना बड़ा दृश्य अन्यत्र देखने में नहीं आया, यह बात संपर्क में आये प्रत्येक वैज्ञानिक ने स्वीकार की। जो पौधे ठीक वैसी ही मिट्टी में अन्यत्र फलते-फूलते, उन्हें नर्सरी से लाते ही यह मनोव्यथा लग जाती और पौधा दो दिन में ही कुम्हलाकर अपने भाइयों के सविनय अवज्ञा आंदोलन में सम्मिलित हो जाता। "प्रकृति में इतना घनिष्ठ सहयोग" यदि कहीं सर जान स्टुअर्ट मिल को देखने को मिल गया होता तो वे "प्रकृति में उपयोगितावाद" के सिद्धांत का प्रतिपादन न करते। बड़ी मछली छोटी मछली को खा जाती है, यह लिखने की अपेक्षा वह छोटे-छोटे लोगों में भी सहयोग की प्रकृति है यह प्रतिपादित करते।

इस बीच पूर्व जन्म के किसी भयंकर अपराध के प्रतिशोध की तरह उस बड़े वृक्ष की जड़ों ने भीतर ऐसा विकास किया कि दरवाजे के खंबों को ही फाड़ दिया। उससे मकान की चूलें चरमरा गईं। प्रकृति के इस भयंकर प्रतिशोध के कारण फोर्ड परिवार बुरी तरह भयभीत हो उठा। उन लोगों ने अन्यत्र मकान ले लिया और वह घर ही छोड़ कर चले गये।

उन्होंने देखा कल तक जो पेड़-पौधे कुम्हलाए पड़े थे, उन सबमें हर्ष की लहर थी, सबमें नूतन चेतनता थी। पौधे बढ़ने लगे, फूलने-फलने लगे, पक्षी फिर लौट आये, गिलहरियाँ फिर कुतुर-कुतुर करने लगी, प्रातः-सायं पुनः कलरव गान होने लगा।

कुछ धार्मिक व्यक्तियों ने कहा फोर्ड ! लगता है कि तुम पिछले जन्मों में कोई पूँजीपति थे और श्रमिकों का शोषण करते थे या कि मिलावट का, कम तौल का, घटिया माल बेचने वाले दुकानदार थे, यह इसका प्रतिफल है। कुछ ने इसे बड़े वृक्ष का शाप बताया। जो भी हो प्रकृति ने यह दिखा दिया कि मनुष्य के लिए वह अपनी इच्छा से ही उपभोग्य हो सकी है, उसकी बर्बरता से नहीं। वह इतनी समर्थ है कि मनुष्य उसे जीत नहीं सकता, उसकी उपासना से चाहे जितने लाभ ले लें।

प्रकृति परमात्मा की व्यवस्थापिका शक्ति है। यह भूल नहीं करनी चाहिए कि परमात्मा नहीं देखता तो कुछ भी किया जा सकता है। प्रकृति का प्रत्येक तिनका उसका प्रतिनिधि, उसकी सहायक शक्ति है; यह मानकर कहीं भी कुछ भी पाप करने से डरकर ही रहना चाहिए। उसकी उपासना के तो और भी सात्विक परिणाम उपलब्ध किये जा सकते हैं।

परमात्मा के इस तात्विक रूप का साक्षात्कार तो मंत्रद्रष्टा ऋषि, उपनिषदकार, संत और साधक ही कर सके हैं, योग-मार्ग और योग साधनाओं का अभ्यास करने से उसके विज्ञानमय स्वरूप की झाँकी होती है, किंतु नहीं है। मनोबल इतना सशक्त जिनका कि वे कठिन साधनाएँ कर सकें, उनके लिये शास्त्रकार कहता है—**"विष्णोरद्भुत कर्मणाः"** वह अत्यंत अद्भुत कर्म करता है—उसकी सत्ता को उसकी विलक्षण रचना द्वारा जानो और उसे प्राप्त करने का प्रयत्न करो।

सूडान के फूजी अजी प्रांत में कुछ ऐसे पौधे पाये जाते हैं, जो अक्सर सीटी बजाया करते हैं। कई बार इनकी सीटियाँ तीव्र बजती हैं। वैज्ञानिकों ने खोज प्रारंभ की तो पता चला कि इन पेड़ों के नीचे कुछ कीड़े होते हैं, जो तने को भीतर खोखला कर देते हैं और एक इंच या उससे भी बड़ा सूराख बना देते हैं। कई बार यह सूराख डालियों तक जाकर फूटते हैं। पेड़ वंशी बन जाता है, जब हवा चलती और इन छेदों से गुजरती है तो सीटी बजने की-सी तेज ध्वनियाँ उच्चरित होती हैं।

दक्षिणी अफ्रीका के वेलाविस्यिया नामक स्थान में एक विचित्र पेड़ पाया जाता है, जो ऊँचाई में कुल १ फुट का होता है किंतु उसके तने की मोटाई १५ फीट होती है। १०० वर्ष तक की आयु के इस वृक्ष में कुल ३ पत्तियाँ ही होती हैं, जो जन्म से होती हैं और सैकड़ों पतझर हो जाने पर भी पौधे का साथ नहीं छोड़तीं।

यह आश्चर्य प्राकृतिक है। प्रकृति की चेतनता ही इस तरह के विलक्षण आश्चर्यों का कारण होती है और इस तीसरे

आश्चर्य की तरह कई बार वे इतने विलक्षण भी होते हैं कि प्रकृति अर्थात् जड़-परमाणुओं में भी एक विधिवत् मस्तिष्क की मान्यता अमान्य नहीं करते बनती, तो भी इन पर विज्ञान हस्तक्षेप कर सकता है विश्लेषण कर सकता है ? इसलिए ऐसे आश्चर्य किसी अव्यक्त सत्ता का बोध कराने के लिये नाकाफी माने जाते हैं।

■ प्रकृति की पाठशाला में

अव्यक्त सत्ता का व्यक्त स्वरूप, प्रकृति के जड़ घटक तो कई बार अपनी विचित्रताओं के द्वारा मनुष्य को प्रेरणा भरी शिक्षाएँ भी देते हैं। यह बात और है कि मनुष्य उन शिक्षाओं से लाभ उठाता है अथवा नहीं; उदाहरण के लिए प्रकृति को ही लें, वह अपने चारों ओर हवा का बना एक ऐसा कवच धारण किये हुए रहती है, जिससे उसकी समृद्धि सुरक्षित बनी रहे। यह कवच न होता तो आकाश में घूमने वाली उल्काओं के प्रहार से उसकी वैसी ही दुर्गति हुई होती, जैसी चंद्रमा की हुई है। चंद्रमा पर हवा का आवरण नहीं है। इसलिए अंतरिक्ष में उड़ने-फिरने वाले उल्कापिंड उससे जा टकराते हैं और सैकड़ों मील लंबे-चौड़े गहरे भयंकर गर्त प्रस्तुत कर देते हैं। चंद्रमा का तल ऐसे ही खड्डों से भरा ऊबड़-खाबड़ है। वायुरहित अनंत शून्य अंतरिक्ष से पृथ्वी की सत्ता को पृथक् एवं सुरक्षित रखने का श्रेय इस वायु आवरण को ही है।

हमारे वायुमंडल में कई प्रकार की गैसों का सम्मिश्रण है। २१ प्रतिशत ऑक्सीजन, ७७ प्रतिशत नाइट्रोजन, १ प्रतिशत कार्बनडाइऑक्साइड तथा थोड़ी-थोड़ी मात्रा में भाप, नियेन, हीलियम, क्रिप्टन, ऐनोन आदि गैसें हैं। यह सम्मिश्रण पृथ्वी की सतह पर सबसे अधिक होता है फिर ऊपर जितने चढ़ते जाएँ उतनी ही हवा गैसों से रहित पतली होती जायेगी। अधिक ऊँचाई पर हवा रहती तो है, पर वह इतनी पतली होती है कि उसमें प्राणी

जीवित नहीं रह सकते। दस हजार फुट ऊँचे पहाड़ों पर चढ़ते ही ऑक्सीजन की कमी अनुभव होने लगती है और साँस लेने में कठिनाई पड़ती है। बीस हजार फुट ऊँचे पर्वत शिखर पर तो बिना ऑक्सीजन की पेटी साथ लिए साँस ले सकना और जीवित रह सकना ही संभव न रहेगा।

पृथ्वी का वायुमंडल कई परतों में बाँटा जा सकता है। पहली परत समुद्र तल से लेकर ८ मील (४२ हजार फुट) ऊँचाई का है, पृथ्वी का मौसम इसी में विनिर्मित होता है। इसे ट्रोपोस्फीयर कहते हैं।

इस पहली परत में जितनी अधिक सामर्थ्य और संपदा भरी पड़ी है, ऊपर की परत में, उसकी तुलना में नगण्य जितना वैभव है, यद्यपि उनका क्षेत्र विस्तार अत्यधिक है। निचली परत में ही जीवधारी साँस लेते हैं, पेड़-पौधे जीवन प्राप्त करते हैं, वर्षा-बादलों की विशेषता उसी में है। महत्त्वपूर्ण गैस संपदा इसी क्षेत्र में है। रेडियो संचार दूरदर्शन, विद्युत्-प्रवाह एवं अन्यान्य अति महत्त्वपूर्ण अंतरिक्षीय शक्तियों का बाहुल्य इसी में है। वह प्राणियों के साथ घुली रहने वाली यह परत इस संसार में जीवन-संचार करती है और समस्त प्रकार की समृद्धि, सुंदरता का अभिवर्धन करती है। हर दृष्टि से पृथ्वी के लिए उस पर निवास करने वालों के लिए यह निचली परत इतनी अधिक उपयोगी है कि अन्य तीनों मिलकर भी उतनी नहीं बैठतीं।

हवा की दूसरी परत ८ मील ऊँचाई से लेकर ६० मील ऊँचाई तक फैली हुई है। इसमें १२ से २१ मील की परिधि में ओजोन गैस की प्रचुर मात्रा है। पृथ्वी की निचली परत पर पाई जाने वाली ऑक्सीजन और सूर्य की अल्ट्रावायलेट किरणों के टकराव से ओजोन बनती है। यह ओजोन सूर्य का प्रचंड ताप को अपने में सोख लेती है और धरती पर उतनी ही मात्रा आने देती हैं जितनी कि आवश्यक है। यदि यह ओजोन आवरण हमारे इर्द-गिर्द न होता तो सूर्य की सीधी किरणें धरती की समस्त जीवन-संपदा

को कब का भूनकर रख देती हैं। यह गर्मी जब घटती-बढ़ती है तो उनका प्रभाव पृथ्वी के मौसम पर भी पड़ता है। स्ट्रेटोस्फीयर आवरण में नीचे और ऊपर के हिस्से में तापमान की दृष्टि से असाधारण अंतर पाया जाता है। ओजोन परत की निचली तह शून्य से ६७ डिग्री फारेनहाइट नीचे रहती है, जबकि उसकी ऊपरी परत शून्य से १७० डिग्री फारेनहाइट ऊपर तक चली जाती है। इस परत में चलने वाली हवाएँ प्रायः २०० मील प्रति घंटे की चाल से चलती हैं। कभी-कभी वे ५० मील नीचे के क्षेत्र में भी उतर आती हैं।

६० मील से लेकर १२० मील तक ऊपर का क्षेत्र आइनोस्फीयर कहलाता है। इस आवरण में जब सूर्य किरणें प्रवेश करती हैं, तो ऑक्सीजन तथा नाइट्रोजन के परमाणु उनके प्रहार से टूट-टूटकर बिखरने लगते हैं और विद्युत् शक्ति संपन्न अणुओं का रूप धारण कर लेते हैं। इन्हें 'चार्ज्ड एटम अथवा मालेक्यूल' कहते हैं। यों यह प्रक्रिया ३० मील ऊँचाई से भी किसी कदर आरंभ हो जाती है, पर अंत उसका १२० मील पर ही जाकर होता है। यह परत रेडियो संचार की दृष्टि से अत्यंत महत्त्वपूर्ण है। रेडियो ध्वनि तरंगें जब अनंत आकाश में फैलती हैं तो यह 'चार्ज्ड एटम्स' ही उन्हें रोक देते हैं और डरा-धमका कर वापस लौटा देते हैं। यही कारण है कि हमारे रेडियो संदेश पृथ्वी की निचली परत में घूमते रहते हैं और हम उन्हें सुन सकते हैं। यदि यह पहरेदार परत न होती तो हमारे प्रसारण अनंत अंतरिक्ष में खो जाते और हम उन्हें पकड़ या सुन न सकते।

आइनोस्फीयर परत के ऊपर भी यों कहने भर को हवा मौजूद है, पर उसका कोई उपयोग नहीं। उसमें अणु-परमाणु भर यहाँ-वहाँ उड़ते फिरते हैं। इसे एक्सोफीयर कहते हैं। अनंत अंतरिक्ष यहीं से आरंभ होता है।

इन ऊपर की परतों के लिए हम उनके विस्तार के कारण कृतज्ञ नहीं है, वरन् इसलिए हैं कि वे छतरी की छाया करके सूर्य

की प्रचंड ऊर्जा से हमारी पृथ्वी को बचाती हैं और आक्रमणकारी उल्काओं को जलाकर भस्म कर देती है। रचनात्मक प्रत्यक्ष अनुदान न सही—संरक्षण एवं सुरक्षात्मक सही, कुछ तो उपकार वे ऊपरी परतें करती ही हैं। उस सीमा तक भूतल के निवासियों को उनका भी आभारी रहना पड़ता है। यदि यह दो विशेषताएँ भी न होतीं तो उन अत्यधिक ठंडे अत्यधिक गरम और साँस लेने में अयोग्य सुविस्तृत क्षेत्र की ओर अपना ध्यान भी नहीं जाता और उनकी चर्चा करने की भी किसी को फुरसत न होती, भले ही वे परतें अपनी ऊँचाई, क्षेत्र विस्तृतता पर गर्व करती हुईं अपने घर में दबी बैठी रहतीं।

जन-जीवन से दूर रहने वाले—अपने को असाधारणता के वैभव से सुसज्जित करने वाले कौतुक-कौतूहल के पात्र चमत्कारी समझे जा सकते हैं, पर उन्हें लोकश्रद्धा से सदा वंचित ही रहना पड़ता है, इसके बिना इनका बड़प्पन नितांत निरर्थक एवं भारभूत बनकर ही रह जाता है। हवा की निचली परत की तरह हम लोकोपयोगी जीवन जिएँ—जनसंपर्क एवं जनसेवा की नीति अपनाएँ तो हम सम्मानास्पद भी हो सकते हैं और महामानव भी। खजूर की तरह निरुपयोगी ऊँचाई किस काम की ? हवा की ऊँची परतें सेवा और सहयोग के आधार पर मिल सकने वाले गौरव को कहाँ प्राप्त कर पाती हैं ?

जन साधारण के साथ रहने को, उनके साथ मिल-जुलकर चलने की प्रकृति यों 'सामान्य' स्तर की मानी जाती है और उसमें बड़प्पन का आभास नहीं होता, तो भी वह अपने लिए और दूसरों के लिए अत्यधिक उपयोगी होती है। इसके विपरीत वह संपन्नता जो व्यक्ति विशेष को असाधारण सिद्ध करते हुए जन संपर्क से दूर रखती है, सौभाग्य का चिह्न समझी जाने पर भी वस्तुतः खोखली और नीरस ही होती है।

कितने ही व्यक्ति अपने अहंकार की पूर्ति के लिए सर्व साधारण की अपेक्षा कहीं अधिक ऊँचे एवं भिन्न बनने के

प्रयत्नशील रहते हैं और सोचते हैं, इससे उनका मान-गौरव बढ़ेगा। विशिष्ट व्यक्ति समझा जायेगा और लोग चकित होकर अपनी तुलना में कहीं अधिक ऊँचा उठा हुआ समझेंगे, तदनुरूप उस बड़प्पन का लोहा मानेंगे। यह मान्यता अत्यंत भ्रामक है। सर्व साधारण की अपेक्षा अपनी आंतरिक महानता अधिक हो—गुण, कर्म, स्वभाव की उच्चस्तरीय विभूतियाँ जुड़ी हों, यह ठीक है पर बाह्य जीवन में सबसे मिलकर, सबके साथ रहकर ही आनंद, उल्लास का उपयोग किया जा सकेगा। बड़प्पन की हविस में जो असाधारण बनने का उद्धत प्रयास करेगा, वह अचंभे, अजूबे जैसा भले ही प्रतीत हो, वस्तुतः वह उपेक्षा एवं अवमानना का ही पात्र बनेगा।

उसी प्रकार देखा जा सकता है कि सर्दी-गर्मी का संतुलन जब कभी बिगड़ता है, तो उसे सुधारने-सँभालने के लिए आँधी-तूफान उठते हैं। सीधी चाल से उल्टी स्थिति को सीधा नहीं किया जा सकता, इसलिए प्रकृति उसे सुधारने के लिए आँधी-तूफान खड़े करती है।

समाज की व्यवस्था और भावना का संतुलन जब तक बना रहता है, तब तक जन-जीवन सामान्य रीति से चलता रहता है, पर जब विकृतियाँ स्थिति को गड़बड़ा देती हैं और अवांछनीयता असहनीय हो जाती हैं, तो ऐसे आंदोलन अभियान फूट पड़ते हैं, जिसे सामयिक क्रांति कह सकते हैं।

समय-समय पर यही होता रहा है और यही होता रहेगा। भगवान् का, देवदूतों का, महामानवों का अवतरण इसीलिए होता है। युग-पुरुष विकृतियों को निरस्त करने के लिए जन्म लेते हैं और अपने साथ आँधी-तूफान लेकर आते हैं। धर्म की ग्लानि, अधर्म का अभ्युत्थान जब असह्य हो जाता है और साधुता का परित्राण, दुष्कृत्यों का विनाश करने के बिना और कोई रास्ता शेष नहीं रह जाता तो फिर युग-परिवर्तन जैसे तूफान अभियान खड़े होते हैं।

आँधी और तूफान जब आते हैं, तो जन-जीवन को अस्त-व्यस्त कर देते हैं और धन-जन की भारी क्षति करके रख देते हैं। ये किसी के रोके रुकते भी नहीं। साइक्लोन, टाइफून, हरीकेन स्तर के आँधी-तूफानों का इतिहास ऐसी विडंबनाओं से भरा हुआ है, जिसे देखने से ऐसा प्रतीत होता है, मानो वे मनुष्य के भयंकरतम शत्रुओं में गिने जाने योग्य हैं।

साइक्लोन वर्ग के अंधड़ के साथ तेज वर्षा भी होती है। इसकी ध्वंसात्मक शक्ति अत्यंत तीव्र रहती है। जब साइक्लोन की गति ७५ मील प्रति घंटा से ऊपर चली जाती है, तब उसे झंझावात या हरीकेन कहते हैं। इनकी औसत क्षमता दस हजार करोड़ अश्व-शक्ति जितनी मानी जाती है। जब गति और भी आगे बढ़कर २०० मील प्रति घंटा हो जाती है तो उसे 'बबंडर' या 'टारनेडो' कहते हैं। इस स्थिति में समुद्र और बादल परस्पर मिले हुए दिखाई देते हैं। रेगिस्तानी क्षेत्र में इसी आधार पर बालुका-स्तंभों की सृष्टि होती है।

वायु-विशेषज्ञ सरफ्रांसिस वोफार्ट ने वायु के विभिन्न स्वरूपों और स्तरों के अनुरूप उसे १२ भागों में विभाजित किया है। उनके अनुसार प्रथम वर्ग की शुद्ध हवा (काम-एयर) प्रति घंटा एक मील की चाल से चलती है। दूसरी हलकी हवा (लाइट-एयर) की गति एक से तीन मील की गति से चलती है। लाइट-ब्रीज की चाल चार से सात मील होती है। इसका स्पर्श त्वचा पर अनुभव होता है और पेड़ों के पत्ते हिलते हैं। जेंटल-ब्रीज की चाल तेरह से अठारह मील होती है, यह धूल उड़ाने की क्षमता रखती है। फ्रेश-ब्रीज छोटे पेड़ों को हिला डालती है, पानी में हिलोरें उठती हैं, भँवर पड़ते हैं। यह उन्नीस से चौबीस मील की चाल से चलती है। ७५ मील की चाल से आगे वाले बबंडर या तूफान जो भी कर गुजरें वह कम है।

गर्मी और सर्दी का असंतुलन, हवा का घनत्व और चाप घटाता- बढ़ाता है। जलीय वाष्प हवा से हल्का होने के कारण वायु के संतुलन में गड़बड़ी उत्पन्न करता है। फलस्वरूप विभिन्न स्तर के आँधी-तूफान उठ खड़े होते हैं।

जिस क्षेत्र में संतुलन बिगड़ेगा उसी में आँधी उठेगी। जहाँ जितना अवरोध खड़ा होगा, वहाँ उसी अनुपात से तूफान उठेगा। सामान्य सुधार क्रम जब कारगर नहीं होते; तब ढीठता और उच्छृखंलता का बढ़ता हुआ उपद्रव, उसी स्तर के क्रांति-अभियानों से दबता है, इस तथ्य को आँधियाँ आये दिन हमें बताती-जताती रहती हैं।

प्रकृति को यदि जीवित सचेतन मानकर चला जाये तो उससे न केवल व्यक्तिगत जीवन में उत्थान की प्रेरणा दिशा प्राप्त होती है, अपितु मानवीय समस्याओं को हल करने का मार्ग भी सुझाती है। आवश्यकता इस बात की है कि प्रकृति की इन शिक्षाओं को सुना, पढ़ा जाये और उनसे लाभ उठाया जाये।

❐ ❐

मुद्रक: युग निर्माण योजना प्रेस,मथुरा